काव्य-विभा

(राजस्थान विश्व विद्यालय द्वारा टी. डी. ?
द्वितीय वर्ष के लिये स्वीकृत)

सम्पादक :

डॉ० नेमीचन्द श्रीमाल एम. ए., पीएच डी.

प्रवक्ता-हिन्दी विभाग

राजकीय महाविद्यालय, सांभर

प्रकाशक :

कॉलेज बुक सेन्टर

[illegible]

संकलन संपादकीय

यह संकलन द्वितीय वर्ष कला की ऐच्छिक हिन्दी के लिए राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार तैयार किया गया है। कविताओं का संकलन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि यह इस आयु-वर्ग के छात्रों की मानसिक-विकास स्थिति के अनुकूल हो। कविताओं के पठन-पाठन में वे सुस्पष्ट बिम्ब ग्रहण कर उनकी मार्मिकता से परिचित हो सकें, इसलिए यथा-सम्भव अमूर्त-विधान से बचने की चेष्टा की गई है। नई धारा के कवियों की सुबोध रचनाएँ ग्रहणशील बनने के साथ-साथ छात्रों को वर्तमान नई काव्य-धारा से परिचित कराने में भी समर्थ हो सकेंगी, ऐसी सम्पादक की मान्यता है। राजस्थानी कवियों के संकलन में भी इस बात की चेष्टा रही है कि वे इस काव्य-धारा का प्रतिनिधित्व कर सकें। सुविधा के लिए राजस्थानी कविताओं का सरलार्थ भी साथ ही दे दिया गया है।

हिन्दी-काव्य के विकास की कहानी की एक प्रौढ़ किन्तु संक्षिप्त भूमिका इसलिए दी गई है कि विद्यार्थियों का मानस-स्तर काव्य की अनुभूत्यात्मक गहराई में उतरने से पूर्व उसकी विभिन्न परिस्थितियों से परिचित हो सके। विद्वानों के मतों को मान्यता देते हुए इस बात की भी चेष्टा की है कि छात्र स्वतन्त्र धारणा से भी कुछ विचार कर सकें। भूमिका में ही कवियों का जीवन-परिचय एवं उनका संक्षिप्त मूल्यांकन संलग्न कर दिया गया है।

पाठ्य-क्रम में काव्य-शास्त्र सम्बन्धी नियमन भी किया गया है, अतः काव्य शास्त्र से सम्बद्ध (पाठ्य क्रमानुसार) दोष, गुण, रीति और शब्द-शक्ति-प्रकरण सरल एवं सुग्राह्य शैली में जोड़ दिया गया है। अन्त में छात्रों की सुविधा के लिए शब्द-कोष भी दिया गया है।

आशा है, यह संकलन विद्यार्थियों के मानस को भावपूर्ण बनाने के साथ-साथ उनके बौद्धिक स्तर को भी उन्नत करने में योग देगा।

अन्त में उन सभी महानुभावों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ
को इसमें स्थान दिया गया है अथवा जिनसे सहायता ली गई है

—संपादक

विषय–सूची

पाठ क्रम | पृष्ठ

पाठ क्रम	पृष्ठ
तार सप्तक	७३–८३
अज्ञेय	७३
गिरिजाकुमार माथुर	७५
गजानन माधव 'मुक्तिबोध'	७७
डॉ० रामविलास शर्मा	७८
प्रभाकर माचवे	८०
भारत भूषण अग्रवाल	८१
नेमिचन्द्र जैन	८२
. कृपाराम बारहठ	८४–८७
राजिया रा सोरठा	८४
२. महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण	८८–९५
दोहे	८८
१३. श्री नाथूराम संस्कर्ता	९६–९८
बीकाणी सावण	९६
१४. कन्हैयालाल सेठिया	९९–१०४
जिनगानी	९९
कुण जमीन रो धणी	१०१
मिनख	१०३
शब्द कोष	क–च

काव्य अनन्त पुण्य का फल है, क्योंकि यह आत्मा की संकल्पात्मक
ानुभूति है। काव्य एक ऐसी धारा है जिसमें अवगाहन करने वाला 'स्व' और
र' की सीमा से ऊपर उठकर लोकोत्तर आनन्द में डुबकी लगाता है। इसी-
लए मनीषियों ने इसे 'ब्रह्मानन्द सहोदर' की संज्ञा दी है। काव्य-प्रणेता कवि
हलाता है जिसे शास्त्रों ने 'मनीषी', 'परिभू' और 'स्वयम्भू' कहा है क्योंकि
ह जिस सृष्टि का निर्माण करता है वह ईश्वरीय सृष्टि से अधिक अलौकिक
ानन्द देने वाली होती है, जहाँ परम मांगलिक करुणा की अजस्र धारा
हती रहती है।

काव्य को अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार से परिभाषित किया है।
कुछ परिभाषाएँ नीचे दी जा रही हैं।

१. "काव्य ऐसी पदावली है जो दोषरहित, अलंकार सहित और गुणयुक्त हो और जिसमें अभीष्ट अर्थ संक्षेप में भली भाँति कहा गया हो।"

—अग्नि-पुराण

२. "वाक्य रसात्मक काव्यं" (रसात्मक वाक्य काव्य है)

—विश्वनाथ, साहित्य-दर्पण

३ "रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्दः काव्य" रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द काव्य है—

—पण्डित राज जगन्नाथ

४. 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। हृदय की इसी

मुक्ति की साधना के लिये मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती है, उसे कविता कहते हैं।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

५. "काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है।"

—जयशङ्कर प्रसाद

६. Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings. It takes its origin from emotions recollected in Tranquility (कविता स्वेच्छानुरूप प्रबल भावों का प्रवाह है, जो शान्त क्षणों मे स्मृत मनोवेगों से उत्पन्न होता है)।

—वर्ड्सवर्थ

इस प्रकार कहा जा सकता है कि काव्य लोकोत्तर आनन्दानुभूति का वाणीगत माध्यम है जिसमें रससिक्त करने की अद्भुत क्षमता है। भारतीय आचार्यों ने काव्य में रस को बहुत अधिक महत्त्व दिया है। पाश्चात्य साहित्य-शास्त्रियों ने इसमें निम्नलिखित चार तत्वों का समावेश माना है :—

(१) भाव-तत्त्व (Emotional Element)
(२) बुद्धि-तत्त्व (Intellectual Element)
(३) कल्पना-तत्त्व (Imagination Element)
(४) शिल्प-तत्व (Style Element)

इस प्रकार कविता "भावों का गुच्छा है, विचारों की कलिका है, कल्पना का पराग है और शैली की हल्की डण्ठल है जिसमें कविता की कली विकसित होती है।"

हिन्दी कविता : विकास की कहानी

अपभ्रंश के गर्भ से जन्म लेकर चलने वाली हिन्दी कविता लगभग १००० वर्ष से अधिक की कहानी को समेटे हुए है। यद्यपि कुछ लोगों ने हिन्दी कविता का जन्म विक्रम की सातवीं शताब्दी से ही ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है।

और बीज रूप में उसकी प्रवर्तिनि का आभास मिलता भी है, फिर भी यदि आचार्य शुक्ल को ही प्रमाण माना जाय तो भी यह अपनी जिन्दगी के १००० वर्ष के लगभग पूरे कर रही है। इस सम्पूर्ण काल को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से विभाजित करने का प्रयत्न किया है, किन्तु अभी तक आचार्य शुक्ल के मत को ही सर्वाधिक सम्मान मिला है। आचार्य ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में इस प्रकार काल विभाजन किया है—

(१) वीरगाथा काल (वि० सं० १०५० से वि० सं० १३७५)
(२) भक्तिकाल (वि० सं० १३७५ से वि० सं० १७००)
(३) रीतिकाल (वि० सं० १७०० से वि० सं० १९००)
(४) आधुनिक काल (वि० सं० १९०० से आगे)

यहाँ हम विभिन्न विद्वानों द्वारा आचार्य शुक्ल के काल विभाजन एवं नामकरण पर प्रस्तुत की गई समालोचनाओं का संक्षेप में उल्लेख करते हुये इन कालों की मुख्य प्रवृतियों और उनके संक्षिप्त इतिहास की चर्चा करेंगे।

सबसे प्रमुख आपत्ति विद्वानों को वीरगाथा काल के नामकरण और उसके उद्भवकाल पर है। उन्होंने अपभ्रंश और 'देश भाषा काव्य' की बारह पुस्तकों के आधार पर इसका नामकरण किया था। अपभ्रंश की अन्य रचनाओं को उन्होंने विवेचनीय नहीं माना क्योंकि उनके अनुसार उनमें कुछ तो पीछे की रचनाएँ थी, कुछ नोटिस मात्र थी और कुछ जैन-धर्म की उपदेश पुस्तकें थीं। इधर विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि श्री शुक्लजी ने जिन पुस्तकों के आधार पर इस काल का नाम वीरगाथा काल रखा है उनमें से कुछ तो पीछे की हैं, कुछ नोटिस मात्र है, कुछ की प्रामाणिकता संदिग्ध है और जो शेष बचती है वे वीरगाथाएँ नहीं है। अतः इस काल के नामकरण का पुनर्विवेचन होना चाहिए। राहुल सांकृत्यायन ने इसकी सीमा को और पहले ले जाकर 'सिद्ध सामन्तकाल' कहा, डॉ० रामकुमार वर्मा ने इसे 'चारण काल' कहा। कुछ लोगों ने 'संधिकाल' भी कहा। वस्तुतः ये सभी नाम पूर्ण सार्थक सिद्ध नहीं हो पाते। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी

साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक लिखकर इस त्रुटि को सुलझाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने इसे 'आदिकाल' का नाम दिया है और अपभ्रंश कालीन लिखी ही हिन्दी-प्रधान रचनाओं को इसमें सम्मिलित करने का प्रयत्न किया है। यद्यपि 'आदिकाल' नाम न सरलता की दृष्टि से कुछ ठीक नहीं लगता, किन्तु अन्य नामों की अपेक्षा इसमें हिन्दी के प्रारंभिक साहित्य को समाहित करने की शक्ति अधिक है।

जहाँ तक इसके सीमा निर्धारण का प्रश्न है वि० सं० १०५० से बहुत पहले ही हिन्दी के अंकुर दिखायी देने लग जाते हैं। इस सम्बन्ध में भी थोड़ी-सी विवेचना अपेक्षित है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है अपभ्रंश के गर्भ से हिन्दी-भाषा का जन्म हुआ। भाषा वैज्ञानिकों और भाषा के इतिहासकारों ने अपभ्रंश का काल वि० सं० ५०० से वि० सं० १००० तक माना है, किन्तु न तो वि० सं० १००० के तुरन्त पश्चात् ही अपभ्रंश साहित्य की धारा एकदम लुप्त हो गई और न इसके २०० वर्ष पूर्व तक इसकी सर्वगुणता और दुर्बलता का दावा किया जा सकता है। अभिप्राय यह है कि अपभ्रंश के उत्थान काल में ही देश भाषाओं के बीज रूप देखने को मिल जाते हैं। इसी-लिए आचार्य शुक्ल ने अपभ्रंश को 'प्राकृताभास हिन्दी' कहा है। उनके मता-नुसार "सबसे पुराना पता तांत्रिक और योग-मार्गी बौद्धों की साम्प्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में लगता है" फिर भी उन्होंने हिन्दी के आदिकाल को वि० सं० १०५० से ही माना है। उधर राहुल सांकृत्यायन ने हिन्दी काव्य-धारा में आठवीं शताब्दी के सिद्धों और सन्तों की वाणी का चयन कर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि हिन्दी का उद्भव वि० सं० १०५० से बहुत पहले ही हो चुका था। शिवसिंह सेंगर ने भी माना है "संवत् सात सौ सत्तर विक्रमादित्य में राजा मान अवन्ती-पुरी का बड़ा पंडित अलंकार विद्या में अद्वितीय था। उसके पास पुष्प भाट ने प्रथम संस्कृत ग्रन्थ पढ़ पीछे भाषा में दोहे बनाये। हमको भाषा की जड़ यही

कवि मालूम होता है"। सम्भवत महाकवि पुष्पदन्त को श्री सेंगर ने अपर्याप्त जानकारी के आधार पर पुष्प भाट माना है।

वस्तुत हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखकों में प्रामाणिक सामग्री जुटाकर उसके शोध-सम्पादन का परिश्रमपूर्ण कार्य आचार्य शुक्ल ने किया था, इसलिए बाद के समय में उन्हीं की बात को आप्त-वाक्य मानकर दोहराने की प्रवृत्ति चली आई। किन्तु, एक तो शुक्ल जी के समय तक अपभ्रंश की पर्याप्त सामग्री प्रकाश में नहीं आई थी और दूसरे शुक्लजी को जैन ग्रन्थों में काव्यत्व की अपेक्षा धार्मिकता अधिक दिखाई दी, इसलिये उन्होंने आदिकाल का समय निर्धारण अपने ढग से किया। इधर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी आदिकाल पर छाये आवरण को हटाने का प्रभूत परिश्रम किया है। उनके अनुसार "यह काल नाना दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शायद ही भारतवर्ष के साहित्य के इतिहास में इतने विरोधों और स्वतोव्याघातों का युग कभी आया होगा। ....यह काल भारतीय विचारों के मंथन का काल है और इसीलिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है।" महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने भी हिन्दी और अपभ्रंश के इस सन्धिस्थल की कड़ी बैठाते हुये लिखा है "अपभ्रंश के कवियों को विस्मरण करना हमारे लिये हानि की वस्तु होगी। यही कवि हिन्दी काव्य-धारा के प्रथम स्रष्टा थे। ......उन्होंने एक योग्य पुत्र की तरह हमारे काव्य-क्षेत्र में नया सृजन किया है, नये चमत्कार, नये भाव पैदा किये, यह स्वयम्भू आदि की कविताओं से अच्छी तरह से मालूम हो जायगा।"

इस संक्षिप्त विवेचन का अभिप्राय यह है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास को लिखते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिये कि हिन्दी की पूर्व पीठिका अपभ्रंश है और इसे विच्छिन्न करके नहीं देखा जा सकता। इसीलिये इस काल के अन्तर्गत सिद्ध-साहित्य, नाथ-साहित्य, जैन साहित्य, वीर-गाथात्मक तथा चारण-साहित्य सभी को आलोच्य माना जाना चाहिये। यहाँ इसी दृष्टि से इस काल के साहित्य के इतिहास पर संक्षिप्त प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायगा।

आदिकाल : (१) सिद्ध साहित्य—वज्रयानी परम्परा के ८४ सिद्धाचार्यों में से अनेक सिद्धों ने अपभ्रंश दोहों तथा चर्यापदों के रूप में साहित्य रचना की। इनमें सरहपा, कण्हपा, शबरपा, भुईपा आदि सिद्धों के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके साहित्य में जिस श्रेणी की रचनाएँ मिलती हैं वही परम्परा कबीर आदि सन्तों की रचनाओं में अधिक विकसित हुयी। इनकी रचनाओं में धार्मिकता के साथ-साथ काव्यात्मकता है और "हमारी सामान्य मनुष्यता को आन्दोलित, द्रवित और प्रभावित" करने की शक्ति है। सरहपा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

जिहि मन पवन न संचरई, रवि ससि नाहि पवेस'
तिहि वट चित्त विसाम करु, सरह कहइ उवेस"

नाथ साहित्य : शुक्लजी के अनुसार "नाथ पंथ सिद्धों की परम्परा से ही छँटकर निकला है, इसमें कोई सन्देह नहीं।" नाथों की संख्या ९ मानी जाती है। आदिनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ इसके प्रवर्तक माने जाते हैं, किन्तु इसे व्यवस्थित रूप गोरखनाथ ने दिया। 'गोरखबानी' नाम से गोरखनाथ की लगभग ४० रचनाओं का एक संग्रह डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने सम्पादित किया है। गोरखनाथ के अतिरिक्त गरीबनाथ, गोपीचन्द, चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ, भरथरी आदि अनेक नाथों की रचनाएँ प्राप्त हुयी हैं। इनका विषय योग ज्ञान, वैराग्य, आत्मज्ञान, शील, सन्तोष आदि हैं। सहज जीवन, रूढ़ि-विरोध, संयम आदि पर बहुत जोर दिया गया है। रस-परिपाक की दृष्टि से इनका अधिक मूल्य नहीं है, किन्तु जीवन-सम्बन्धी सामान्य भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से ये अच्छी रचनाएँ हैं। आगे भक्तिकाल के सन्त-साहित्य पर इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा।

जैन साहित्य : शुक्लजी के इतिहास-लेखन के पश्चात् जैन-भण्डारों से प्रभूत सामग्री मिली है और उसका उचित सम्पादन हुआ है। इस काल के अनेक उच्चकोटि के जैन कवि प्रकाश में आये हैं जिनमें स्वयंभू, पुष्पदन्त, पद्मकीर्ति, धवल, हेमचन्द्र, सोमप्रभसूरि आदि हैं। कविवर स्वयंभू को तो

राहुल सांकृत्यायन ने भारतवर्ष के [illegible] कवियों में मानी है। इस काल के कीर्तिमान साहित्य में अनेक उच्चकोटि की रचनाएं उपलब्ध हैं जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं—

'पउम चरिउ' और 'रिट्ठणेमि चरिउ' (स्वयम्भू-८ वीं शताब्दी ई०), 'हेमचन्द्र शब्दानुशासन'-(हेमचन्द्र १२ वीं शती), 'भविसयत्तकहा' (धनपाल १० वीं शती ई०), 'करकंडु चरिउ' (कनकामर ११ वीं शती), 'कुमारपाल प्रतिबोध' (सोमप्रभाचार्य–११ वीं शती)।

इन काव्यों में मानव-जीवन का पूरा चित्र मिलता है। "अपभ्रंश का निखरा भाषा स्वरूप, छन्दों का कलात्मक प्रयोग, अलंकार-सौन्दर्य और युद्ध, प्रेम, वैराग्य, धर्म आदि मानव-जीवन के गम्भीर व्यापारों का विस्तृत चित्रण" इन काव्यों में मिलता है।

वीर गाथात्मक साहित्य : राज्याश्रय में रहने वाले तत्कालीन कवियों और चारणों ने अपने आश्रयदाताओं के चरित्र को अतिरंजित करके जो रचनाएँ की वे वीर गाथात्मक साहित्य के अन्तर्गत आती हैं। अपभ्रंश के उत्तरकालीन हिन्दी-प्रवृत्त साहित्य की उपलब्धि से पहले से ही रचनाएँ इस काल की उपजीव्य मानी जाती थी। इनमें निम्नलिखित मुख्य हैं

१. पृथ्वीराज रासो (चन्दवरदायी), २. बीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह), ३. खुमाण रासो (दलपत विजय), ४. हम्मीर रासो (शार्ङ्गधर), ५. विजयपाल रासो (नल्हसिंह), ६. परमाल रासो (जगनिक का मूलरूप —अज्ञात कवि)।

इन सभी रचनाओं का शुद्ध प्रामाणिक रूप नहीं मिल सका, इसलिए विद्वान इन्हें संदिग्ध मानते हैं। क्योंकि ये सभी काव्य जनता में रहे और लोक-शिक्षा का आधार लिये रहे, अतः इनमें पर्याप्त प्रक्षेप हो गया, फिर भी ये रासो पूरे के पूरे जाली नहीं हैं। इन सबमें 'पृथ्वीराज रासो' बहुत बड़ा ग्रन्थ है और उस पर बहुत अधिक शोध हुआ, किन्तु अभी निर्णय नहीं हो सका है।

ये काव्य राजस्तुति-परक रचनाएं हैं। इनमें वीर और शृंगार के उत्कृष्ट कोटि के वर्णन है। इतिहास-तत्त्व का इन सभी में पर्याप्त अभाव है और कल्पना का प्राचुर्य है। ये विकसन-शील काव्य की श्रेणी में आते हैं और साहित्यिक मूल्याङ्कन की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व रखते हैं। इनके रचयिता कवि होने के साथ-साथ वीर भी थे, इसलिए वीर रस के वर्णन बड़े ओजस्वी और सजीव है।

फुटकर साहित्य : उपर्युक्त साहित्य के अतिरिक्त इस काल में फुटकर साहित्य भी मिलता है जिसमें शृंगारादि का वर्णन बहुत उत्कृष्ट है। मुसलमान कवि अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान) का संनेहरासय (सन्देश-रासक) एक उत्कृष्ट कोटि की रसात्मक रचना है। मैथिली कोकिल विद्यापति की पदावली तो रसात्मकता, भाव-सौन्दर्य और अनुभूति की दृष्टि से उच्चकोटि की साहित्य-रचना है ही।

भक्तिकाल : आचार्य शुक्ल ने पूर्व-मध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल की सीमा वि० सं० १३७५ से १७०० तक मानी है। यह सवा तीन सौ वर्षों का काल हिन्दी-साहित्य में सांस्कृतिक चेतना, प्रमुख सामाजिक चेष्टा, भाव-गांभीर्य तथा कलात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से स्वर्ण-काल माना जाता है। इसका उन्मेष ग्रियर्सन के अनुसार 'बिजली की चमक के समान अचानक' हुआ है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। दक्षिण में आलवार भक्तों ने पाँचवीं-छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक भक्ति की अजस्र धारा बहाई थी। वही धारा उत्तरी भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य का लाभ उठाकर वहाँ भी प्रवाहित हो उठी। भक्ति-आन्दोलन से पूर्व उत्तरी भारत में राजनीतिक अव्यवस्था, उत्पीड़न तथा सामाजिक असुरक्षा के कारण जीवन निच्छिन्न और क्षीण-सा हो गया था। इस आन्दोलन ने उसी के भीतर से पुनर्निर्माण की शक्तियों का विकास किया और नवीन जीवनादर्श और मूल्यों की प्रतिष्ठा की। इस काल के युग-निर्माता कवियों ने जिस उच्च नैतिक चेतना को जगाया था वह आज भी किसी-न-किसी अंश में उत्तर-भारत के अधिकांश जन-समूह के चित्त में आरूढ़ है।

भक्ति की यह धारा विविध रूपो मे प्रकट हुई। शङ्कर के अद्वैतवाद-मायावाद मे जनता को कल्याण का मार्ग नही मिल पा रहा था। ऐसे समय मे रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य आदि सन्तो ने अद्वैती मायावाद का अपने-अपने ढग से खण्डन किया और भक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए उत्तर-भारत मे अपने केन्द्र स्थापित कर भक्ति-आन्दोलन को बल दिया। इनमे से किसी ने सीताराम की उपासना का मार्ग खोला, किसी ने कृष्ण-भक्ति का प्रचार किया। इनके साथ ही ईश्वर को निराकार मानने वाले सन्तो ने भी भक्ति को एक अद्भुत आवेगमयी ज्ञान-स्थिति मे स्वीकार किया। उधर इस्लाम के आगमन से प्रेमोपासक सूफी सन्त भारतीय चिन्तन-धारा के सम्पर्क मे आकर इस भक्ति-आन्दोलन मे योग देने लगे। चारो ओर से नाना प्रकार की भक्ति-धाराओ ने आकर इस आन्दोलन को गतिशील बनाया और इसलिए यह आन्दोलन 'भारतवर्ष मे होने वाले सभी आन्दोलनो से विशाल' था। भक्ति के इस आन्दोलन मे रामानुज परम्परा के आचार्य स्वामी रामानन्द सबसे शक्तिशाली नेता कहे जाते हैं जिन्होंने निर्गुण और सगुण सभी प्रकार के भक्तो का मार्ग प्रशस्त किया।

भक्ति के इन प्रयत्नो के स्वरूप जो विविध रूप सामने आये, विद्वानो ने उन्हें दो स्थूल वर्गो मे विभाजित किया है —

१. निर्गुण धारा,   २. सगुण धारा।

पुन. इन दोनो के भी दो-दो अवान्तर भेद दिखाई देते हैं—

१. निर्गुण भक्ति-धारा— (क) ज्ञानाश्रयी शाखा (सन्त शाखा)
(ख) प्रेमाश्रयी शाखा (सूफी शाखा)

२. सगुण भक्ति-धारा— (क) राम-भक्ति शाखा
(ख) कृष्ण-भक्ति शाखा।

१. निर्गुण-धारा —(क) ज्ञानाश्रयी-शाखा—इस शाखा की काव्य धारा का प्रेरणा-स्रोत सिद्धो और नाथो की वाणी माना जाता है, किन्तु इसके आदि-प्रवर्त्तक के रूप मे कबीरदास (१३६६–१५१८) का नाम लिया

इस शाखा के अन्य कवियों के नाम व उनकी कृतियाँ इस प्रकार हैं—

मुल्ला दाऊद (चंदायन), कुतुबन (मृगावती), मभन (मधुमालती), उस्मान (चित्रावली), शेखनबी (ज्ञानदीप), कासिम शाह (हंस जवाहर), जान कवि (मधुकर मालती), नूर मुहम्मद (इन्द्रावती)।

२. सगुण भक्ति धारा : (क) राम-भक्ति शाखा—उत्तरी-भारत में राम-भक्ति के प्रवर्तक के रूप में स्वामी रामानन्द का नाम लिया जाता है। इन्होंने नारायण अथवा विष्णु के स्थान पर अवतारी श्रीराम की भक्ति पर बल दिया। वेद-विहित कर्मकाण्ड के स्थान पर इन्होंने भक्ति को श्रेष्ठ ठहराया।

इस शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास (१५३२–१६२३) हैं, जिनके विषय में विस्तार से आगे लिखा गया है। यहां इतना ही बताना पर्याप्त है कि "अकेले तुलसीदास का व्यक्तित्व और कृतित्व इतना महान् है कि उन्होंने राम-भक्ति के प्रसार में जो सफलता पायी है, वह किसी संगठित सम्प्रदाय को भी नहीं मिल पाती।" इनका 'राम चरित मानस' इस शाखा का ही नहीं सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है और भारतीय जन-जीवन की लोक-मर्यादा का आधार स्तम्भ है। इस शाखा के अन्य कवियों में अग्रदास, नाभादास, हृदयराम, प्राणचन्द्र आदि कई श्रेष्ठ कवि हुये हैं। ब्रज और अवधी दोनों ही भाषाओं में इस शाखा का काव्य-सृजन हुआ है। इस शाखा में कर्म और ज्ञान से समन्वित एवं शक्ति, शील और सौन्दर्य उपादानों से विरचित भक्ति का पूर्ण स्वरूप विकसित हुआ है। इस शाखा के काव्य की गहराई का यह प्रभाव रहा कि आधुनिक युग में भी कई श्रेष्ठ राम भक्ति काव्यों की रचना हुई।

(ख) कृष्ण-भक्ति शाखा : मैथिल-कोकिल विद्यापति हिन्दी कृष्ण-काव्य के प्रथम कवि माने जाते हैं। मध्यकाल में कृष्ण-भक्ति के प्रसार का श्रेय श्री वल्लभाचार्य को है जिन्होंने शुद्धाद्वैतवाद की स्थापना करके अनेक कवियों को इससे प्रभावित किया। इन्होंने पुष्टि-मार्ग की स्थापना की और प्रेम-लक्षणा भक्ति को महत्त्व दिया। इस भक्ति के वात्सल्य, माधुर्य, सख्य आदि कई

जाता है। कबीर की गणना हिन्दी-साहित्य के अग्रगण्य कवियों में की जाती है। उनके विचारों में मानवता के शाश्वत मूल्य और सर्व-कल्याणकारी मर्यादाएँ निहित हैं। काव्य-कला की दृष्टि से भले ही कबीर का काव्य उच्च-कोटि का न ठहरे, किन्तु भाव-गांभीर्य की दृष्टि से यह बहुमूल्य है। कबीर के अतिरिक्त इस सन्त-परम्परा में रैदास, कमाल, नानक, दादू, मलूकदास आदि आते हैं। इन सभी सन्त-कवियों के काव्य में साहित्यिक स्तर तो बहुत उच्च नहीं, किन्तु उसमें उन उदात्त भावों की प्रधानता है जो लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित हैं।

(ख) प्रेमाश्रयी शाखा—परमात्मा को पाने के लिये जिन भक्त कवियों ने प्रेम को साधना माना, वे निर्गुण धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के अन्तर्गत आते हैं। इस शाखा को सूफी काव्य-धारा भी कहते हैं क्योंकि इसके प्रमुख कवि सूफी साधक थे। सूफी मत का उदय फारस में हुआ बताया जाता है, किन्तु भारतवर्ष में आकर उसने एक नया ही रूप धारण कर लिया। मुस्लिम एकेश्वरवाद, भारतीय अद्वैतवाद, नाथ सम्प्रदाय और आध्यात्मिकता के सिद्धान्तों का एक अपूर्व सामंजस्य इसमें हो गया।

इन कवियों ने भारतीय लोक-जीवन की प्रेम-कहानियों को भारतीय भाषा में बड़े ही भावात्मक ढंग से लिखा। फलतः इनकी कहानियों का हिन्दू और मुसलमान सभी में समान आदर तो हुआ ही, ये कवि इन दोनों जातियों को परस्पर निकट लाने के भी कारण बने।

इस धारा के कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं, जिन्होंने 'पद्मावत' की रचना अवधी भाषा में की। यह एक उच्च-कोटि का हिन्दी-ग्रन्थ है जो भाव-पक्ष और कला-पक्ष के साथ आध्यात्मिक दृष्टि से भी आदर के योग्य माना गया है। इस काव्य की शैली अन्य सूफी कवियों की भाँति मसनवी पद्धति की है। काव्यत्व की दृष्टि से यह उत्कृष्ट कोटि का प्रेमाख्यानक काव्य है।

इस शाखा के अन्य कवियों के नाम व उनकी कृतियाँ इस प्रकार है—

मुल्ला दाऊद (चंदायन), कुतुबन (मृगावती) मंझन (मधुमालती), उसमान (चित्रावली), शेखनबी (ज्ञानदीप), कासिम शाह (हंस जवाहर), नूर कवि (मधुकर मालती), नूर मुहम्मद (इन्द्रावती) ।

२. सगुण भक्ति धारा (क) राम-भक्ति शाखा—उत्तरी-भारत में राम-भक्ति के प्रवर्त्तक के रूप मे स्वामी रामानन्द का नाम लिया जाता है । इन्होंने नारायण अथवा विष्णु के स्थान पर अवतारी श्रीराम की भक्ति पर बल दिया । वेद-विहित कर्मकाण्ड के स्थान पर इन्होंने भक्ति को श्रेष्ठ ठहराया ।

इस शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास (१५३२–१६२३) हैं, जिनके विषय मे विस्तार से आगे लिखा गया है । यहाँ इतना ही बताना पर्याप्त है कि "अकेले तुलसीदास का व्यक्तित्व और कृतित्व इतना महान् है कि उन्होंने राम-भक्ति के प्रसार मे जो सफलता पायी है, वह किसी संगठित सम्प्रदाय को भी नहीं मिल सकी ।" इनका 'राम चरित मानस' इस शाखा का ही नहीं सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है और भारतीय जन-जीवन की लोक-मर्यादा का आधार स्तम्भ है । इस शाखा के अन्य कवियो मे अग्रदास, नाभादास, हृदयराम, सहजराम आदि कई श्रेष्ठ कवि हुये हैं । ब्रज और अवधी दोनों ही भाषाओं मे इस शाखा का काव्य-सृजन हुआ है । इस शाखा मे कर्म और ज्ञान से मण्डित एवं शक्ति, शील और सौन्दर्य उपादानो से विरचित भक्ति का पूर्ण स्वरूप विकसित हुआ है । इस शाखा के काव्य की गहराई का यह प्रभाव पड़ा कि आधुनिक युग मे भी कई श्रेष्ठ राम-भक्ति काव्यो की रचना हुई ।

(ख) कृष्ण-भक्ति शाखा : मैथिल-कोकिल विद्यापति हिन्दी कृष्ण-काव्य के प्रथम कवि माने जाते हैं । मध्यकाल मे कृष्ण-भक्ति के प्रसार का श्रेय श्री वल्लभाचार्य को है जिन्होंने शुद्धाद्वैतवाद की स्थापना करके अनेक कवियो को उसमे प्रवृत्त किया । इन्होंने पुष्टि-मार्ग की स्थापना की और प्रे-मलक्षणाभक्ति को महत्त्व दिया । इस भक्ति के व

जाता है। कबीर की गणना हिन्दी-साहित्य के अग्रगण्य कवियों में की जाती है। उनके विचारों में मानवता के शाश्वत मूल्य और सर्व-कल्याणकारी मर्यादाएँ निहित हैं। काव्य-कला की दृष्टि से भले ही कबीर का काव्य उच्च-कोटि का न ठहरे, किन्तु भाव-गांभीर्य की दृष्टि से यह बहुमूल्य है। कबीर के अतिरिक्त इस सन्त-परम्परा में रैदास, धर्मदास, नानक, दादू, मलूकदास आदि आते हैं। इन सभी सन्त-कवियों के काव्य में साहित्यिक स्तर तो बहुत उच्च नहीं, किन्तु उनमें उन उदात्त भावों की प्रधानता है जो लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित है।

(ख) *प्रेमाश्रयी शाखा*—परमात्मा को पाने के लिये जिन भक्त कवियों ने प्रेम को साधना माना, वे निर्गुण धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के अन्तर्गत आते हैं। इस शाखा को सूफी काव्य-धारा भी कहते हैं क्योंकि इसके प्रमुख कवि सूफी साधक थे। सूफी मत का उदय फारस में हुआ बताया जाता है, किन्तु भारतवर्ष में आकर उसने एक नया ही रूप धारण कर लिया। मुस्लिम एकेश्वरवाद, भारतीय अद्वैतवाद, नाथ सम्प्रदाय और आध्यात्मिकता के सिद्धान्तों का एक अपूर्व सामंजस्य इसमें हो गया।

इन कवियों ने भारतीय लोक-जीवन की प्रेम-कहानियों को भारतीय भाषा में बड़े ही भावात्मक ढंग से लिखा। फलतः इनकी कहानियों का हिन्दू और मुसलमान सभी में समान आदर तो हुआ ही, ये कवि इन दोनों जातियों को परस्पर निकट लाने के भी कारण बने।

इस   में सबसे अधिक प्रसिद्ध कवि मलिक मुहम्
की। यह एक

रूप सामने आये। उनके पुत्र विट्ठलनाथ ने 'अष्टछाप' की स्थापना करके हिन्दी को कई उत्कृष्ट कवि प्रदान किये जिनमें 'सूरदास' प्रमुख हैं। 'सूरदास' न केवल कृष्ण-भक्ति के ही, अपितु सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य के श्रेष्ठतम कवियों में से हैं। इन पर विस्तार से आगे लिखा गया है।

अष्टछाप के आठ कवि ये हैं—सूरदास, नन्ददास, कुम्भनदास, परमानन्ददास, कृष्णदास, छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी और चतुर्भुजदास। इनमें नन्ददास, परमानन्द आदि उत्कृष्ट कोटि के कवि हैं।

अष्टछाप के इन कवियों के अतिरिक्त भी कई श्रेष्ठ कोटि के कवि हुए हैं जिनमें मीराबाई, हित हरिवंशदास, हित वृन्दावनदास, गदाधर भट्ट, स्वामी हरिदास, सूरदास, मदनमोहन, रसखान आदि प्रसिद्ध हैं। इन कवियों ने राधा और कृष्ण की युगल मूर्ति के चारों ओर सौन्दर्य, प्रेम, माधुर्य और आनन्द के सागर की जो सृष्टि की है, वह आज तक भी रसिक भक्तों के हृदय को उल्लास प्रदान करती है। श्रीकृष्ण के लोकरंजनकारी रूप और उनकी लीलाओं का इतना मधुर, व्यापक और हृदय-स्पर्शी वर्णन किया है कि उसका जोड़ नहीं मिलता। इन्होंने मुक्तक शैली में ही शृङ्गार और वात्सल्य रसों को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। इन कवियों के इस काव्य-वैभव पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भावोच्छ्वास पूर्ण उद्‌गार प्रकट किये हैं "वैराग्य के विपुल भार से जर्जर इस देश के अन्तरतल में सहज प्रेम की निष्ठा को प्रज्ज्वलित किया है, इन ब्रजभाषा के कवियों ने। " एक तरफ है सहस्राधिक सम्प्रदायों के साधुओं के उपास्य नीरस, निर्गुण ईश्वर और दूसरी तरफ है यह प्रेम का उद्‌गम, माधुर्य की सरिता, भक्ति का समुद्र, सौन्दर्य का सर्वस्व, राधा-माधव की युगल मूर्ति।"

रीतिकाल : (वि० सं० १७०० से वि० सं० १६०० तक)—यही काल 'कला-काल', 'अलङ्कृतकाल' तथा 'शृङ्गारकाल' नाम से भी जाना जाता है। 'रीति' शब्द का अर्थ काव्य करने की प्रणाली है। इस काल में रीति का मान्य अर्थ प्रणाली के अनुसार काव्य-रचना करना हुआ। इस तरह यह यह काल

गया। संस्कृत साहित्य में कवि और आचार्य भिन्न-भिन्न थे। हिन्दी आदिकाल और भक्तिकाल में काव्य-सृजन की प्रवृत्ति ही रही, आचार्यत्व की ओर ध्यान नहीं दिया गया। इस काल में आकर कवि-कर्म और आचार्यत्व को एक में मिला लिया। फल यह निकला कि ये दोनों ही क्षेत्र में उत्कृष्ट कोटि पर नहीं पहुँच सके।

इस काल में तीन प्रकार की काव्य-धाराएँ देखने को मिलती हैं। पहली वह जिसके रचनाकार आचार्य और कवि दोनों थे और जिन्होंने रीति-सिद्धान्तों के आधार पर लक्षण-ग्रंथों की रचना की। दूसरी धारा के कवि रीति-सिद्धान्तों के पारंगत तो थे और उन्होंने अपने काव्य-सृजन में उनका ध्यान भी रखा, किन्तु उनसे बँधकर नहीं चले। इन दोनों से पृथक् धारा उन उन्मुक्त कवियों की थी जो काव्य की स्वच्छन्द धारा में अवगाहन करते थे। इन्होंने रीतिबद्ध धारा की बँधी हुई नालियों से हट कर काव्य का उत्साह प्रवाहित किया, प्रेम और जीवन के स्वच्छन्द गान गाये। विद्वानों ने इन तीन धाराओं को (१) रीतिबद्ध (२) रीतिसिद्ध और (३) रीतिमुक्त धाराओं के नाम से अभिहित किया है।

रीति बद्ध : जैसा कि ऊपर बताया गया है इस धारा के कवि आचार्यत्व और कवित्व दोनों का बाना ओढ़कर चले, किन्तु "आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन और पर्यालोचन शक्ति की अपेक्षा होती है, उसका विकास नहीं हुआ।" एक दोहे में अपर्याप्त लक्षण देकर कवि-कर्म में प्रवृत्त हो जाते थे। 'काव्य-शास्त्र' के लिए संस्कृत ग्रंथों को आप्त-वाक्य मानकर उनका काव्य-रूपान्तरण प्रस्तुत करने तक ही ये सीमित रहे। फिर भी इस प्रकार का लक्षण-काव्य बहुत अधिक परिमाण में रचा गया। इस धारा के प्रमुख कवि कृपाराम, बलभद्र मिश्र, केशवदास, सेनापति, चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, देव, भिखारीदास, पद्माकर आदि हैं। यद्यपि ये सभी रीति-बद्ध धारा के कवि थे, किन्तु कइयों ने लक्षण ग्रंथों के अलावा भी स्वतन्त्र रचना की और वह अच्छी बन पड़ी। भूषण, सेनापति, मतिराम, देव, पद्माकर आदि के नाम इनमें आते हैं।

रीति सिद्ध धारा इस धारा के कवियों में सर्वश्रेष्ठ कवि बिहारी, का नाम आता है। इनकी सतसई कोई लक्षण-ग्रन्थ नहीं है, किन्तु उसमें काव्यांगों की ओर कवि का ध्यान है तथा उन पर अच्छा अधिकार है। स्पष्ट ही इस धारा के कवि 'रीति' को सिद्ध तो किये हुये होते थे, किन्तु उसमें बँधकर नहीं चलते थे।

रीति मुक्त : इस काल में काव्य की सच्ची अभिव्यक्ति वस्तुतः इस धारा के कवियों ने की। ये प्रेम की पीड़ा के गायक थे और 'रीति' के कायल नहीं थे। इन्होंने काव्य-रचना किसी चमत्कार से प्रेरित होकर नहीं की; अपितु स्वानुभूति को आधार बनाकर की। रीति-बद्ध और रीति-मुक्त कवियों में अन्तर करते हुए आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है—"रीति-बद्ध कवि रच-रचकर कविता बनाने, शब्द-रत्न की पच्चीकारी करने में मरते-पचते रहते थे, रीति-मुक्त कवि का काव्य-स्रोत स्वतः उद्‌भवित होता था। रीति-बद्ध काव्य-प्रणाली उसकी बुद्धि के संकेत पर टेढ़े-सीधे मार्ग पर बढ़ती थी, पर रीति-मुक्त कवि अपनी वाग्धारा में स्वतः बह जाता है।" वस्तुतः घनानन्द के शब्दों में "लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावे" से दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। इनके अतिरिक्त बोधा, आलम, ठाकुर कवि भी इसी मुक्त परम्परा के कवि हैं।

रीतिकाल पर एक दृष्टि डालने से उसकी कई विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं। यह काल अलङ्कृति, सजावट और दिखावट का काल था। चमत्कार-वृत्ति इसकी प्रेरणा थी। शृङ्गारोन्मुखता और विलासात्मकता इसे दरबारी संस्कृति से प्राप्त हो गई। फलत. काव्य में शृङ्गार की ही प्रधानता रही और वह भी संभोग शृङ्गार की। वियोग के चित्र चमत्कार-वृत्ति के कारण मार्मिक नहीं बन पाये। भक्ति की धारा भी चलती रही, किन्तु "आगे के सुकवि रीझि हैं तो कविताई, न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है" का आश्रय लेकर। वीर रस की रचनाएँ भी इस काल में मिलती हैं। कुछ कवि पर्याप्त सरस काव्य रचना कर सकने में समर्थ हुए हैं। भाषा की दृष्टि

है यद्यपि यह पच्चीकारी और मीनाकारी का युग था, किन्तु भाषा का परिष्कार ये कवि नहीं कर सके। हाँ, कोमल भावाभिव्यक्ति के लिए उसमें पर्याप्त माधुर्य और सरसता उत्पन्न हो गई। प्रबन्ध काव्यों का तो इस काल में सर्वथा अभाव-सा ही है। कवित्त-सवैयों-दोहों आदि में मुक्तक रचना ही अधिक हुई।

आधुनिक काल हिन्दी कविता का आधुनिक काल वि० स० १६०० से प्रारम्भ माना जाता है। यह काल हिन्दी कविता के बहुमुखी क्रान्तिकारी परिवर्तनों का काल है। इसमें अनेक प्रकार के वादों का जन्म हुआ, अनेक उत्कृष्ट कोटि के काव्य और महाकाव्य रचे गये, भाषा की दृष्टि से परिष्करण हुआ, शिल्प और कला-पक्ष की दृष्टि से अनेक प्रयोग हुए। इसलिए इस काल का अध्ययन समग्रता की अपेक्षा निम्नलिखित विन्दुओं से पृथक्-पृथक् समुचित रहेगा।

(१) भारतेन्दु युगीन कविता (२) द्विवेदी युगीन कविता
(३) छायावादी कविता (४) प्रगतिवादी कविता
(५) प्रयोगवादी, नई कविता।

(१) भारतेन्दु युगीन कविता रीतिकाल की प्रवमानोन्मुखता में भारतेन्दु ने विचारधारा का नया दृष्टिकोण लेकर प्रवेश किया। यद्यपि भाषा की दृष्टि से इन्होंने व्रजभाषा को ही काव्योपयुक्त माना और शृङ्गारिकता का भी पुट बनाये रखा, किन्तु राष्ट्रीयता, समाज-सुधार और देशोद्धार की भावना को भी काव्य में स्थान दिया, जिसका परिणाम यह निकला कि रीतिकालीन प्रवृत्ति में एकदम मोड़ आ गया। भारतेन्दु युगीन काव्य-धारा पर प्रकाश डालते हुए डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा है "भारतेन्दु युग के काव्य-साहित्य को पढ़ने से एक विचित्र कौलाहल का अनुभव होता है। विभिन्न धाराओं के मिलने से पाठक को आकाश-भेदी कलकल ध्वनि सुनाई पड़ती है।.... कविता में एक महान् और बहुविध साहित्य की सृष्टि पहले से ही हो चुकी थी, इसलिए उससे तुरन्त मुँह मोड़ लेना एक दैवी चमत्कार से

कम न होगा।" काव्य क्षेत्र में भारतेन्दु जी ने नये-नये विषयों का समावेश किया। इस धारा के अन्य कवि प्रताप नारायण मिश्र, चौधरी बद्रीनारायण, प्रेमघन, द्विजदेव, अम्बादत्त, सेवक, रघुराजसिंह आदि आते हैं। आधुनिकता की दृष्टि से भारतेन्दु काल का ऐतिहासिक और साहित्यिक दोनों प्रकार का महत्त्व है।

(२) **द्विवेदी युगीन कविता** . वस्तुत कविता का रीतिकाल से सम्बन्ध विच्छेद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। उन्होंने गद्य की भाँति पद्य की भाषा भी खड़ी बोली ही अपनायी और 'सरस्वती' का सम्पादन कर उसका पूर्ण प्रसार किया। रीतिकालीन शृङ्गारिकता को खड़ी बोली की इतिवृत्तात्मकता में डुबा दिया। प्रारम्भ में यह इतिवृत्तात्मकता खटकने लगी थी, किन्तु शीघ्र ही खड़ी बोली में अच्छे कविता का प्रादुर्भाव होगया और काव्य-सरिता बह निकली। इस काल के कवियों ने हिन्दी-काव्य की परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति विरोध प्रकट कर प्रकृति, मानव और जीवन के सम्बन्ध में व्यापक दृष्टिकोण ग्रहण किया। इस युग में अनेक महाकाव्य, खण्डकाव्य, आख्यानककाव्य, गीति काव्यों की रचना हुयी। साहित्यिक परिवर्तन के साथ-साथ दार्शनिक और कलात्मक परिवर्तन भी हुए। भावात्मकता, मानवजीवन की उच्चवृत्तियों एवं कल्पना के सुन्दर दृश्यों की अभिव्यक्ति इस काल में होने लगी। गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, बदरीनाथ भट्ट, प्रसाद, पन्त, निराला आदि इस युग के अन्त तक के प्रमुख कवि हैं। 'राष्ट्रीय धारा, जो भारतेन्दु काल में जन्म ले चुकी थी इस युग में विकास को प्राप्त हुई।" इसी युग में 'प्रियप्रवास, महाकाव्य की रचना हुई। "काव्य में एक नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ और रूढ़ियों और परम्पराओं का तिरस्कार कर कवियों ने एक नवीन युग की भूमिका बाँधी।" खड़ी बोली के अतिरिक्त इस काल में ब्रजभाषा के भी उच्चकोटि के कवि हुए जिनमें जगन्नाथदास रत्नाकर, राय देवी प्रसाद पूर्ण, सत्यनारायण कविरत्न उल्लेखनीय हैं।

छायावादी कविता : *हिन्दी-साहित्य में छायावादी आन्दोलन एक बहुत बड़ा काव्य-वैभव लेकर आया। इस काल में भाव, भाषा, शिल्प और अभिव्यंजना की दृष्टि से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इस सम्बन्ध में छायावाद के कवि चतुष्टय के चारों कवि—'प्रसाद-पंत-निराला महादेवी' सर्वविदित हैं, अतः इस काव्य-धारा की प्रवृत्तियों का थोड़ा विस्तृत परिचय अपेक्षित है।*

छायावाद को आलोचकों ने स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह माना है। द्विवेदी कालीन इतिवृत्तात्मकता ने काव्य-क्षेत्र में जो नीरसता और शुष्कता परिव्याप्त की, नवजागरण के मुग्ध कवियों की भावुक वृत्तियाँ उसमें कसमसाती रहीं। उनकी रोमानी कल्पना को उसमें अपना अकल्याण दिखाई देने लगा। फलतः अंग्रेजी की स्वच्छन्दतावादी भावधारा, जो बंगाल में मुखरित हो रही थी, का प्रभाव ग्रहण कर यहाँ भी कवियों ने आत्मा के गीत गाये, कल्पना की रंगीनी में नीड़ बनाया। भावों के इस बाँध के टूट जाने से अभिव्यंजना में, शिल्प में, भाषा में और दृष्टिकोण में एकबारगी ही क्रान्तिकारी परिवर्तन लक्षित होने लगा। इसी परिवर्तित काव्य-धारा को छायावाद का नाम दिया गया है।

परिभाषा की दृष्टि से विद्वानों ने इसे कई प्रकार से शब्दों में बाँधने का प्रयास किया है। आचार्य शुक्ल ने छायावाद और रहस्यवाद को लगभग एक समझते हुए छायावाद को काव्य शैली या पद्धति के व्यापक अर्थ में स्वीकार किया और रहस्यवाद का सम्बन्ध काव्य वस्तु से माना। स्पष्ट ही यह परिभाषा भ्रान्त है। डॉ० नगेन्द्र ने इसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह मानते हुए बताया "छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।" आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी के शब्दों में "मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया [illegible]" *छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है। प्रसादजी ने लिखा* [illegible] वाद भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक [illegible] है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्य, प्रकृति-विधान तथा

उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आन्तरस्पर्श करके भावसमर्पण करने वाली अभिव्यक्ति-छाया कातिमयी होती है।" संक्षेप में "जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी रचना होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।"

छायावाद में कुछ तो पाश्चात्य स्वच्छंदतावाद की प्रवृत्तियाँ आ गईं और कुछ भारतीय धरातल से उद्भूत हुईं। संक्षेप में छायावाद की निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं—

(क) स्वच्छंदतावाद से मिली हुई—१ आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति, २ कल्पना की अतिशयता, ३. सौन्दर्य के प्रति अत्यधिक आकर्षण, ४ विस्मय की भावना, ५. सर्वचेतनावाद या एक ही सूक्ष्म चेतना का समस्त विश्व में दर्शन, ६. सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक बन्धनों व रूढ़ियों से विद्रोह, ७. उन्मुक्त प्रेम की प्रवृत्ति।

(ख) भारतीय धरातल से उद्भूत—१ भारतीय दार्शनिक और आध्यात्मिक चिन्तन की विविध परम्पराओं की अभिव्यक्ति २ आधुनिक युगीन भारतीय सांस्कृतिक नव-जागरण के विविध पक्षों—विवेकानन्द और रामतीर्थ की अद्वैतमूलक भक्ति-साधना गान्धीवादी मानवतावाद, रवीन्द्र कवीन्द्र का विश्व-बन्धुत्ववाद–आदि की काव्यात्मक अभिव्यक्ति, ३. राष्ट्रीयता की भावना और विदेशी शासन के विरुद्ध विद्रोह।

(ग) शिल्प की दृष्टि से—लाक्षणिक अभिव्यंजना, २. मूर्तामूर्त का प्रत्यक्षीकरण, ३ सूक्ष्म भावों एवं प्रकृति का मानवीकरण, ४. भाषा की वक्रता और उपयुक्त शब्द-प्रकृति।

छायावाद का प्रारम्भ सन् १९११–१४ से माना है और सन् १९३६ तक आते-आते इसकी गति मन्द हो गई। यों आज भी हिन्दी काव्य में छायावाद जीवित है, किन्तु उसका चरम विकास प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा के काव्य में हो चुका है। इन कवियों पर अलग पृथक् में विवेचन

प्रस्तुत किया गया है, इसलिए यहाँ उसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इतना ही कहा जा सकता है कि द्विवेदी युग मे अंकुरित होने वाली खड़ी बोली ने छायावाद के प्राङ्गण मे आकर अपने वैभव-विलास का चरम सुख भोगा और वह भाषा इतनी समृद्ध, भावोत्पुक्त और काव्य-वैभव से पूर्ण हो गई कि किसी भी भाषा से टक्कर ले सकती है। हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का गौरवमय पद दिलाने मे छायावाद का विशेष हाथ है।

प्रगतिवाद · राजनीतिक साम्यवाद की अवतारणा साहित्य-क्षेत्र में प्रगतिवाद के नाम से हुयी। साहित्य-कोश के अनुसार "प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थवाद के नाम पर चलाया गया वह साहित्यिक आन्दोलन है, जिसमे जीवन र यथार्थ के वस्तु-सत्य को उत्तर-छायावाद-काल मे प्रश्रय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी।" द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी प्रतिष्ठा ने मानव द्वारा मानव के शोषण के विरुद्ध जो आवाज उठायी, उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रगतिवाद ने की। छायावाद के रूमानी स्वप्नों ने मानव की दयनीय स्थिति से आँख मूँद लेने की प्रेरणा दी थी, प्रगतिवाद ने उसी के प्रति विद्रोह किया और कवि की संवेदना को यथार्थ की ओर मोड़ा।

रूस में साम्यवाद की स्थापना से ही इसके स्वर उभरने लग गये थे, किन्तु सन् १९३५–३६ के बाद इसकी चिन्तन-धारा स्पष्ट होने लगी। उपन्यासकार प्रेमचन्द के सभापतित्व में सन् १९३६ मे 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुयी। धीरे-धीरे काव्य-वेत्ता इस ओर आकृष्ट हुये और छायावाद के स्तम्भ कवि निराला और पन्त ने भी प्रगतिशील स्वर अपनाये। शिवदानसिंह चौहान, निराला, पन्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारीसिंह दिनकर, सुभद्राकुमारी चौहान, डॉ० रामविलास शर्मा, गिरजा कुमार माथुर, नागार्जुन, नरेन्द्र शर्मा अंचल आदि इसके उल्लेखनीय कवि है।

इस वाद की कविता ने हमारे रूढिवादी संस्कारो को झकझोर कर ोय धरातल पर सोचने की प्रेरणा दी। यथार्थ से आँख मूँद लेने की जो

प्रवृत्ति छायावाद में बढ़ गई थी, उसे दूर कर स्वस्थ चेतना और सामाजिक दायित्व के निर्वाह की प्रेरणा इस काव्य ने दी। हाँ, राजनीतिक गठबंधन के कारण यह आन्दोलन अधिक विकसित नहीं हो सका।

प्रयोगवाद : नई कविता . छायावाद की अतिरूमानी भावधारा और प्रगतिवाद की संकुचित राजनीतिक परिमिति ने काव्य-क्षेत्र में प्रयोगवाद को जन्म दिया। इस प्रवृत्ति का जन्म 'तार सप्तक' (सन् १९४३) के प्रकाशन से माना जाता है, किन्तु इसके अंकुर बहुत पहले ही उग आये थे। प्रगतिवाद के घेरे ने व्यक्ति की अनुभूति को केवल सामाजिकता के सन्दर्भ में देखा, किन्तु इसमें व्यक्ति के अन्दर का अहं सन्तुष्ट न हो सका। प्रयोगवाद वस्तुतः व्यक्ति-अनुभूति की शक्ति के माध्यम से समष्टि की सम्पूर्णता तक पहुँचने का प्रयास है। 'तार सप्तक' के प्रकाशन में अज्ञेय ने प्रयोगवाद को कोई वाद मानने से इन्कार करते हुए लिखा "उनके तो (तार सप्तक के कवियों के) एकत्र होने का कारण यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुये नहीं हैं, अभी राही हैं—राही नहीं, राहों के अन्वेषी।"

'प्रयोगवाद' बहुत दिनों तक राह का अन्वेषण करता रहा। 'तार सप्तक' के बाद 'दूसरा सप्तक' (१९५१), 'तीसरा सप्तक' (१९५९) का प्रकाशन हुआ। तीनों के सम्पादक अज्ञेय हैं। सन् १९५४ में जगदीश गुप्त एवं रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में 'नयी कविता' का प्रकाशन हुआ। धीरे-धीरे यह धारा सभी क्षेत्रों को प्रभावित करने लगी।

'प्रयोगवाद' के नाम से बहुत दिनों तक अधकचरी कविताएँ भी साहित्य में आती रहीं और इसलिए लोगों को प्रयोगवाद के नाम से चिढ़ होने लगी। 'प्रयोगवाद' ने धीरे-धीरे अपना नाम बदल कर 'नयी कविता' कर लिया जिसमें पर्याप्त सौष्ठव, गाम्भीर्य एवं स्वस्थ चेतना है। प्रयोगवाद किंवा 'नयी कविता' की सर्वमान्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) अहंवादी प्रवृत्ति, (२) व्यक्ति-चेतना, (३) बौद्धिकता, (४) यौन परिष्कृति या नग्न यथार्थवाद, (५) शिल्प-वैचित्र्य, (६) नये उपमानों की

खोज, (७) बिम्बों की योजना, (८) भाषा, भाव एवं विचार के क्षेत्र में रूढ़ियों से विद्रोह, (९) मुक्त-छन्द योजना ।

इस काव्य-धारा ने अनेक उत्कृष्ट कोटि के कवि दिये है जिनमें अज्ञेय, धर्मवीर भारती, गिरजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, भवानीप्रसाद *मिश्र, नेमिचन्द्र जैन, नरेश मेहता, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे आदि* बहुत प्रसिद्ध है। 'तार सप्तक' के सात कवियों का परिचय एवं मूल्यांकन आगे दिया गया है।

प्रयोगवाद पर अनेक प्रहार हुए, किन्तु सबको झेलते हुए अब 'नयी कविता' के नाम से यह काव्य-क्षेत्र मे प्रगति कर रहा है। इसने अनुभूति के घिसे-पिटे दृष्टिकोण को बदल कर जीवन के प्रति नयी सशक्त और चैतन्य दृष्टि दी है। इसमे 'अस्तित्ववाद' 'सर्व चेतनावाद', जैसे नये काव्यान्दोलन भी विकसित हो रहे है और 'प्रयोग', क्योंकि परीक्षण और अन्वेषण की शक्ति देता है, जीवन मूल्यों को परखने और स्थापित करने के प्रयत्न नयी कविता बनाम प्रयोगवाद मे चल रहे है।

राजस्थानी काव्य-धारा

भाषाओं के वैज्ञानिक विकास की दृष्टि से राजस्थानी का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। जहाँ मध्यदेशीय शौरसेनी से हिन्दी का विकास हुआ, वहाँ गुर्जर शौरसेनी ने गुजराती-राजस्थानी को जन्म दिया, किन्तु बहुत समय से हिन्दी-प्रान्त से सलग्न रहने के कारण राजस्थानी और हिन्दी मे विकास की समानता-सी हो गयी। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् तो राजस्थान प्रदेश को भी हिन्दी-भाषी-क्षेत्र ही स्वीकार कर लिया गया है। राष्ट्रभाषा के विकास और सम्मान की दृष्टि से उसके क्षेत्र का विस्तार अच्छी बात है, किन्तु राजस्थानी को प्रान्तीय स्तर भी न मिलना अवश्य खेदजनक है *जबकि उसका एक* विशाल और समृद्ध साहित्य रहा है।
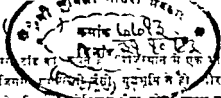
राजस्थान के बारे में जेम्स टॉड का कथन है, "राजस्थान में एक भी छोटी रियासत ऐसी नहीं है जिसमें (थर्मोपिली जैसी) युद्धभूमि न हो और कदाचित् ही कोई ऐसा नगर हो जिसने लियोनिडास जैसा योद्धा उत्पन्न न किया हो।" इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि और होमर जैसा कवि पैदा न किया हो।" वस्तुतः राजस्थान वीर-प्रसविनी रही है और उसको पर गौरव दिखाने का बहुत बड़ा श्रेय यहाँ के काव्य को भी है। यहाँ कवियों की एक विशिष्ट जाति रही है जो चारण नाम से प्रसिद्ध है और जिनका सम्मान यहाँ राजपूत राजा गुरु के समान करते थे। राजस्थानी साहित्य में ऐसी ओजस्व-शक्तिपूर्ण कविताएँ भी हैं जिनके लिए कहा गया है कि उनमें दस हजार घोड़ों का बल है। अतः इस साहित्य का संक्षिप्त स्वतन्त्र परिचय अपेक्षित है।

विद्वानों ने राजस्थानी का काल-विभाजन विभिन्न प्रकार से किया है। वस्तुतः सम्पूर्ण राजस्थानी काव्य को दो मोटे वर्गों में रखा जा सकता है—

(१) डिंगल शैली का काव्य

(२) आधुनिक शैली का काव्य।

(१) डिंगल शैली का काव्य यों तो डिंगल शैली की काव्य-रचना आधुनिक युग में भी हो रही है, किन्तु हिन्दी के वीरगाथा काल, भक्तिकाल और रीतिकाल में राजस्थानी काव्य रचना की शैली डिंगल थी। एक विशेष पद्धति में गीत, दोहे, सोरठे रचे जाते थे और उन्हें विशेष ढङ्ग से ही पढ़ा जाता था। इस शैली की एक विशेषता वयण-सगाई है। यह एक विशेष प्रकार का शब्दालंकार है जिसमें छन्दों के चरणों में वर्णों की मैत्री होती है अर्थात् प्रत्येक चरण के प्रथम शब्द का प्रथम वर्ण उसी चरण के अन्तिम शब्द के प्रथम वर्ण की जाति का होना है, उदाहरणार्थ—

> धर बंकी बंका धणी, बंका भड़ बरहास।
> अरियंका मूधा करै, बंका 'युद्ध बणास ॥'
> अड़यो अकबरियाह, तेज तुहान्दो तुरकड़ा,
> नम-नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी।

कुछ लोग राजस्थानी को डिंगल भाषा भी कहते हैं, किन्तु अब यह मान्यता पुरानी पड़ती जा रही है और डिंगल को राजस्थानी की एक शैली विशेष मान लिया गया है।

डिंगल शैली में उत्कृष्ट कोटि की काव्य रचना हुई है। इसकी वीर रस की कविताएँ राजस्थानी में ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। 'डिंगल' को कुछ लोगों ने तो वीर रस की भाषा ही माना है। हेमचन्द्र के शब्दानुशासन में भी राजस्थानी की इस शैली में लिखी वीररसात्मक कविताओं का परिचय मिलता है। इस धारा के मुख्य-मुख्य कवियों में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं—

१. चन्दबरदायी (पृथ्वीराज रासो, रचनाकाल अनुमानतः १३वीं शताब्दी विक्रम)
२. शिवदास गाडण (वि० सं० १४८०, रचना—अचलदास खीची री वचनिका)
३. बादर ढाढ़ी वि० की १५ वीं शताब्दी—वीरमायण
४. पद्मनाभ रचनाकाल १५१२ वि०—कान्हड़दे प्रबन्ध
५. ईसरदास वि० सं० १५१५—हाला झालां रा कुण्डलिया
६. दुरसा आढ़ा वि० सं० १५६२—'विरुद-छिहत्तरी' तथा अन्य ग्रंथ
७. पृथ्वीराज राठौड़ वि० सं० १६०६—वेलिक्रिसन रुकमणीरी
महाराणा प्रताप रा दूहा
८. कविराज बांकीदास वि० १८३८ वीर-विनोद, भुरजाल भूषण
९. महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण वि० सं० १८१४—वीर सतसई, वंश भास्कर
१०. नाथूदान महियारिया वि० सं० १६४८—वीर सतसई।

इनके अतिरिक्त अनेक फुटकर कवि हुए हैं जिन्होंने वीररसात्मक कवित्त, गीत, दोहों और सोरठों की रचना की। वीररस के अतिरिक्त शृंगार, भक्ति और हास्य रस की भी अनेक रचनाएँ इस शैली में हुयी। शृङ्गार की दृष्टि से 'ढोलामारू रा दूहा' एक उत्कृष्ट कोटि का प्रणय ग्रन्थ है।

'ऊजली-जेठवा रा दूहा' भी एक उत्कृष्ट कोटि का विरह-काव्य है। 'वेलिक्रिसन रुक्मणी री' पृथ्वीराज राठौड़ की एक कृति है, जो शृङ्गार रस का ग्रंथ होने के साथ साथ भक्ति रस की रचना भी है। ईसरदास की 'हरि रस' भक्ति-रस की रचना है। कविराज बाँकीदास ने भी 'गंगालहरी' नाम से गंगा-भक्ति के दोहों की रचना की है।

डिंगल शैली की परम्परा आधुनिक काल से पूर्व ही मानी जानी चाहिये, वैसे इसमें रचना आज भी हो रही है 'वीर सतसई' और 'वंश भास्कर' के रचयिता सूर्यमल्ल मिश्र भी सं० १६०० के पश्चात् की ही देन है।

(१) आधुनिक शैली की काव्य रचना वस्तुत राजस्थानी का गौरव डिंगल शैली तक ही रहा। उसके बाद हिन्दी के विकास के कारण राजस्थानी का विकास रुक गया और इसमें काव्य रचना नहीं हुई। राजस्थानी का आधुनिक काल काव्य-रचना की दृष्टि से समृद्ध नहीं माना जा सकता। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कुछ लोगों का ध्यान इस ओर गया है और थोड़ी-बहुत रचनाएँ प्रकाश में आयी है। यद्यपि वे पर्याप्त नहीं है और किसी विशेष प्रवृत्ति की सूचक भी नहीं है, फिर राजस्थानी के अपने स्वाभाविक माधुर्य के कारण इन नये रचनाकारों की रचनाओं को पर्याप्त लोक-प्रसिद्धि मिली है। इन नवीन रचनाओं में राजस्थान की धरती, जन-जीवन, लोकरूढ़ियों आदि का सुन्दर चित्रण हुआ है। इन गीतों की गेयता कर्ण-प्रिय रही है इसलिए जनता को आकर्षित करने की क्षमता भी इनमें है, किन्तु आधुनिक युग के काव्य की विकासमान प्रवृत्तियाँ इसमें नहीं आ पायी [illegible] लिए राजस्थानी के कवि राजस्थानी में लिखने के [illegible] रहे है।

[illegible] प्रगति की है।
[illegible] भाटी,
कन्हैयालाल सेठिया,
[illegible] राजावत,

राजस्थानी साहित्य के अतीत को ध्यान में रखते हुए आधुनिक साहित्य के इतिहास को अभी परिश्रमी और प्रतिभावान काव्यकारों की अपेक्षा है।

विद्यार्थी वर्ग में राजस्थानी काव्य-धारा के प्रति अभिरुचि जगाने की दृष्टि से इस सकलन मे दो डिंगल शैली के और दो आधुनिक शैली के कवियों को स्थान दिया गया है।

कवियों का परिचय एवं मूल्यांकन

सूरदास :

परिचय : 'आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएं श्री कृष्ण की प्रेम लीला का गान करने उठी, जिनमें सबसे ऊँची सुरीली और मधुर झंकार अन्धे कवि सूरदास की थी ।"
—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

सूरदास के जीवन वृत्त सम्बन्धी अनेक तथ्य अभी विवादास्पद बने हुए हैं, फिर भी कुछ शोधक विद्वानों के अनुसार उनका जन्म सं० १५४० विक्रम (सन् १४८३ ई०) में *मथुरा और आगरा के बीच रुनकता ग्राम* के सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था । कुछ लोग इन्हें महाकवि चन्दवरदायी के वंश में भी सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं । बाबू राधाकृष्णदास के अनुसार ये लगभग ८० वर्ष जिये और इस तरह इनकी मृत्यु-तिथि सं० १६२० विक्रम (सन् १५६३ ई०) के आस-पास ठहरती है । कुछ लोग इन्हें जन्मान्ध मानते हैं, किन्तु जनश्रुति है कि किसी स्त्री के प्रेमपाश में बंधकर इन्होंने अपनी आँखें फोड़ ली थीं । इनके काव्य में जिस प्रकार का सजीव, प्रत्यक्ष-वत, वर्णन है और रंगों की जो योजना है, उसे देखते हुए इन्हें जन्मान्ध मानना अधिक तर्क-संगत नहीं लगता ।

सूरदास पहले विनय के पद गाया करते थे, किन्तु वल्लभाचार्य ने "सूर ह्वै कै घिघियात काहे हो, कछु लीला वर्नन करो" कहकर इन्हें पुष्टिमार्ग में दीक्षित किया और इनकी दास्य-भाव की भक्ति को सख्य-भाव में बदल दिया । भागवत की कथा को आधार बनाकर इन्होंने श्री कृष्ण की लीलाओं का रंजनकारी वर्णन किया और वात्सल्य और श्रृङ्गार-क्षेत्र में उन गहराइयों तक पहुँच गये जहाँ तक अद्यावधि कोई नहीं पहुँचा ।

(,)

किंवदन्ती है कि सूर ने सवा लाख पदों की रचना की, किन्तु अब
उनके केवल ५, ६ हजार पद ही उपलब्ध हैं। सूरसागर इनके पदों का
सग्रह है जो भक्तो का कण्ठ-हार है। इसके अतिरिक्त भी सूरदास की अन्य
रचनाएँ बताई जाती हैं जिनमे सूरसारावली, साहित्य-लहरी, नल-दमयन्ती
और ब्याहला आदि मुख्य है।

मूल्यांकन : सूरदास का मूल्याकन करने वाली अनेक उक्तियाँ हिन्दी-
साहित्य प्रेमियो मे प्रचलित हैं, जिनका सार यही निकलता है कि आगे की
कविता सूरदास की जूठन रह गई है। यद्यपि इस बात मे मतभेद हो सकता
है, किन्तु जैसा कि आचार्य शुक्ल का मत है, इनकी साहित्यिक रचना इतनी
प्रचुर, प्रगल्भ और काव्याग-पूर्ण है कि अगले कवियो की शृङ्गार और वात्सल्य
की उक्तियाँ इनकी जूठी जान पडती है। शृङ्गार और वात्सल्य के क्षेत्र मे सूर
की समता को और कोई कवि नही पहुँचा है।

'सूरसागर' मे यद्यपि प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से कथातत्त्व का निर्वाह
अद्भुत सुगठित नही है, किन्तु उसमे प्रबन्ध-काव्य का सा पूर्ण औदार्य और
गाम्भीर्य है। कवि ने वात्सल्य वर्णन मे इतनी गहराई और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता
का परिचय दिया है कि ससार-साहित्य मे उनका काव्य अद्वितीय स्थान
का अधिकारी है। बाल-मनोवृत्ति की जिन गहरी रेखाओ और सहज क्रीड़ाओ
को सूरदास ने अपनी तूलिका से अंकित किया है, वैसा आज तक कोई कवि
नही कर सका। यह उनकी वर्णन-क्षमता का प्रसाद है कि वात्सल्य को भी
त्व की कोटि मे लेना पड़ा। रसराजत्व प्रदान किया

"हिन्दी मे यदि किसी ने शृङ्गार को सच्चा
तो सूर ने" आचार्य शुक्ल के इस कथन मे विवाद की गुंजाइश नही।
सूर ने अपने बाल-मित्र कृष्ण की शृङ्गार क्रीड़ाओ का स्वच्छन्द वर्णन
किया है। यमुना की कछार, करील के कुंज, पनघट और घर-द्वार पर प्रेम
पिचकारी छूटती है, जीवन का ऐसा उल्लास तरगित होता है कि
सब प्रश्नो से डूब जाता है। वस्तुत यह तो उस विशाल

भाव-वैभव की पृष्ठभूमि-मात्र है जो सूर के विप्रलंभ शृङ्गार में बिखरा पड़ा है। सूर की प्रतिभा का पूर्ण विकास तो विरह की उस मनोदशा में है जो यशोदा, राधा, गोपियों, गोप, गाएँ, यमुना, करील कुंज और ब्रजभूमि के कण-कण के रूप में सूर ने भोगी है। 'भ्रमर-गीत' संसार के श्रेष्ठतम विरह-काव्यों में से है जिसमें भाव-विह्वलता तन्मयता, स्वाभाविकता, वाग्वैदग्ध्य और कलात्मक सजीव सरसता का सागर उमड़ पड़ा है। सूर-काव्य की भाव प्रवणता और मार्मिक अभिव्यंजना के कारण ही निम्नलिखित उक्ति प्रचलित है।

"किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर
किधौं सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत सरीर"

सूर की भाषा को शुक्लजी ने लोक परम्परा से चली आयी बोलचाल की ब्रजभाषा का साहित्यिक रूप माना है। भाषा में माधुर्य और ओज के साथ-साथ प्रसाद गुण की प्रधानता है। भावाभिव्यक्ति में सूर ने कहीं भी भाषा को बन्धन नहीं माना। उसमें सर्वत्र भावानुकूल अनविच्छिन्न प्रवाह मिलता है। कला-पक्ष की दृष्टि से भी सूर का काव्य उत्कृष्ट कोटि की रचना है। पदों की गेयता ने छन्दों को प्रवाह दिया है और अलंकार-विधान ने उनके सीमित विषय को असीमता दी है।

तुलसीदास :

परिचय . भारतीय सन्तों की आत्म-प्रकाशन से बचने की भावना का एक दुष्परिणाम हिन्दी-साहित्य को यह भोगना पड़ा है कि उन महापुरुषों की प्रामाणिक जीवन-सामग्री भी उपलब्ध नहीं हो पाती। महात्मा तुलसी भी, जिन्हें ग्रियर्सन ने गौतम बुद्ध के बाद उत्तरी भारत का सबसे बड़ा लोकनायक बताया है, अपनी जीवन-घटनाओं को भूल-भुलैया में छोड़ गये हैं। लोक-श्रुतियों, प्राप्त सामग्री और अन्त. साक्ष्य के आधार पर जो कुछ इस महापुरुष के विषय में तथ्य सकलित हुये हैं, उनका सार यह है कि इनका जन्म वि०

सं० १५८६ में बांदा जिले के राजापुर ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी बताया जाता है। जाति से सरयूपारी ब्राह्मण थे। ये इनके दीक्षा-गुरु नरहर्यानन्द (नरहरिदास) को एक तुलसी के पौधे के नीचे सोये हुये मिले बताये। विद्या-गुरु श्री सनातन से इन्होंने वेद, शास्त्र, दर्शन पुराणादि का अध्ययन किया। गुणवती ब्राह्मण कन्या रत्नावली से इनका विवाह हुआ और उस पर अत्यधिक अनुरक्ति ही इनके वैराग्य का कारण बन गई। पत्नी की फटकार से कामासक्त तुलसी रामासक्त हो गये और भजन, कीर्तन, उपदेश, सत्संग में अपना त्यागपूर्ण सरल एवं सात्विक जीवन बिताते हुए वि० सं० १६८० को परमधामवासी हुये। ये रामानन्दीय सम्प्रदाय के वैष्णव थे। किन्तु इनके 'मानस' में सभी सम्प्रदायों का नवनीत सकलित है। वर्णाश्रम धर्म और मर्यादा इनके आदर्श रहे और इनका 'मानस' वर्णाश्रम धर्म और मर्यादा का आदर्श हो गया।

इनका कीर्ति-कलश 'मानस' स० १६३४ में सम्पूर्ण हुआ। इसके अतिरिक्त भी इन्होंने बहुत कुछ लिखा जिनमें विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली, राम-लला-नहछू, पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल, बरवै-रामायण, वैराग्य संदीपनी, कृष्ण-गीतावली आदि प्रमुख है। कवितावली 'मानस' के ही आदर्श पर कवित्त और सवैयों में लिखी रचना है जिसमें कवि ने उन मार्मिक स्थलों पर कलम चलायी है जो उनके हृदय को बार-बार आकर्षित करते रहते थे। प्रस्तुत सकलन में कवितावली के कवित्त ही सगृहीत है।

मूल्यांकन : यदि व्यापकता और लोक-प्रसिद्धि को आधार ठहराया जाये तो तुलसी भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ कवियों में आते है। पिछले ४०० वर्षों का भारतीय जन-जीवन अधिकाशतः उसी आदर्श पर जीता चला आ रहा है जो तुलसी ने 'मानस' की मर्यादा में बाँधा था। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के पावन- ˘ अपना प्रतिपाद्य बना कर उसके माध्यम से मानव जीवन की व्याप- ...ा और कुशलता से अभिव्यक्त की है। लोक-जीवन के आदर्श की , झाँकी प्रस्तुत कर सभी धर्मों, मतों और वादों का सामजस्यपूर्ण चित्र

दिया और लोक-धर्म की मर्यादा बाँधी। मध्यकालीन राजनीतिक उथल-पुथल और धार्मिक प्रतिघातों से त्रस्त जनता को एक ऐसा सबल दिया जिसके सहारे वह सैंकड़ों वर्षों तक जीती चली आई।

काव्य-पक्ष की दृष्टि से तुलसी की भावुकता उत्कृष्ट कोटि की है। इन्होंने जीवन के विविध परिपार्श्वों के चित्र इतनी मार्मिकता, सरसता और संवेदना से खींचे है कि मन रससिक्त हो उठता है। उनकी भावुकता न केवल प्रबन्ध-काव्य में ही पूर्णता को प्राप्त हुई है, अपितु कवितावली, गीतावली, विनय-पत्रिका आदि स्फुट ग्रंथों में भी उन मार्मिक स्थलों को अनूठी अभिव्यक्ति मिली है। रीतिकाल के कवियों ने जहाँ कविता को चमत्कार-प्रधान ही सिद्ध किया, वहाँ इस महाकवि ने कवित्तों में भी वैसी ही रसात्मकता उँडेल दी। प्रसंगों की पुनरावृत्ति रस-सवलित होकर दुगुने आकर्षण का कारण बनी।

कला-पक्ष की दृष्टि से भी तुलसी का काव्य उत्कृष्ट है। लोक और साहित्य-प्रचलित सभी पद्धतियों में उन्होंने काव्य-रचना की। अलंकार भाव और वाणी के अनुवर्ती होकर आये और उनके काव्य की व्यंजना को प्रभाव-पूर्ण और सशक्त बनाने में समर्थ हुए हैं। शास्त्रज्ञ होने के नाते उनका भाषा-ज्ञान उत्कृष्ट कोटि का था और भाषा की स्वच्छता, सरलता, सरसता और शुद्धता में हिन्दी का कोई भी कवि तुलसी की समता नहीं कर सकता।

तुलसी के काव्य में भाव-पक्ष और कला-पक्ष का इतना समानुपाती संयोग है कि जहाँ रागतत्व को ढूँढने वाले भाव-विभोर हो जाते हैं, वहाँ कला-तत्व के प्रेमी भी मुग्ध हुए बिना नहीं रहते। महात्मा तुलसी समन्वयवादी लोक-मर्यादा-प्रेमी, भावुक-भक्त, उत्कृष्ट कवि और युग उन्नायक के रूप में युगों से याद किये जाते रहे हैं और किये जाते रहेंगे।

'देव' :

परिचय : भावविलास में दिये हुये दोहों के आधार पर देव का जन्म-काल वि० सं० १७३० (सन् १६७३ ई०) सिद्ध होता है। मिश्र-बन्धुओं, रामच

…ुक्त तथा श्यामसुन्दरदास ने इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण माना है, किन्तु डॉ० नगेन्द्र …ने इन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण बताया है। देव के वर्तमान वंशज अपने को 'दुबे' कहते हैं और इटावा से लगभग ३० मील की दूरी पर 'कुसमरा' नामक ग्राम में रहते हैं। कुछ लोग इटावा में भी रहते हैं। देव की मृत्यु वि० स० १८२५ (सन् १७६८) में हुई।

रीतिकाल में आश्रयदाता की प्राप्ति एक सौभाग्य की बात मानी जाती थी और देव को कई आश्रयदाताओं की शरण लेनी पड़ी। औरङ्गजेब के पुत्र आजमशाह, भवानीदत्त वैश्य, भोगीलाल, सुजानमणि, अकबरअली खां आदि आश्रयदाताओं के लिए देव को कुछ न कुछ लिखते रहना पड़ा और इसलिए उनके ग्रंथों की संख्या बढ़ती चली गयी। शिवसिंह सरोज में इनके ग्रंथों की संख्या ७२ उल्लिखित है जिसमें ११ के ही नाम गिनाये गये हैं। मिश्र-बन्धुओं ने भी इनकी ग्रंथ संख्या ७२ या ५२ मानी और १५ प्राप्त तथा ६ अप्राप्त कुल २४ ग्रंथों की सूची प्रस्तुत की। शोधकों ने उनके निम्नलिखित १३ ग्रंथ प्रामाणिक ठहराये हैं—(१) अष्टयाम, (२) भवानीविलास, (३) रस विलास, (४) काव्य रसायन, (५) भावविलास, (६) सुजान विनोद, (७) कुशल-विलास, (८) सुमिल विनोद, (९) प्रेमचन्द्रिका, (१०) सुखसागर तरंग (११) देव चरित्र, (१२) देव माया प्रपंच नाटक और (१३) देव शतक इनमें 'रस विलास' और 'भाव विलास' इनके उत्कृष्ट ग्रंथ हैं।

मूल्यांकन : 'भूलि कहत नवरस सुकवि, सकनि मूल सिंगार' … घोषणा करने वाले कवि देव ने शृङ्गार के रसराजत्व का उत्कट प्रतिप… किया। उनके समस्त लक्षण-ग्रंथों में शृङ्गार एवं नायिका भेद की प्रधानता … जा सकती है। देव आचार्य भी थे, उनके लक्षण-ग्रंथ इसके प्रमाण … संचारियों के वर्गीकरण में हिन्दी आचार्यों की पिष्ट-पेषित परिपाटी से … देव ने नयापन और मौलिकता लाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने स… के शारीरिक और आन्तरिक भेद किये, संचारियों के अवान्तर भेद वि…

'छन्द' नामक ३४ वें सवारी को जोड़ने का प्रयत्न किया। रसवादी होने के कारण अलंकारादि निरूपण में अधिक मनोयोग नहीं दिखाया, फिर भी सभी काव्यांगों का वर्णन किया ।

वस्तुत देव का आचार्यत्व उनके काव्यत्व के समकक्ष नहीं ठहरता। राजसभा में यथोचित सम्मान पाने के कारण ही उनके कवि को आचार्य का बाना भी पहनना पड़ा, अन्यथा उनकी भावुकता सदा ही अपने विकास के लिये मार्ग बनाती रही। उनकी प्रतिभा का प्रस्फुटन काव्य के क्षेत्र में अधिक और शास्त्र-विवेचन में कम हुआ है। आचार्य शुक्ल तो आचार्यत्व की दृष्टि से देव का कोई विशेष स्थान नहीं मानते। हाँ, उनकी काव्यात्मक सरसता, परिष्कृत सौन्दर्य-बोध, मौलिक उद्भावना-शक्ति और भावुक सवेदना के आगे बिहारी को भी कम स्थान देते हैं। उनके छन्दों में जैसी संगीतात्मकता, रसप्लावन क्षमता और अनुभूति की गहराई है, उसके आधार पर वे रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि ठहराये गये हैं। हिन्दी साहित्य में देव और बिहारी को लेकर कई दिनों तक एक अच्छा खासा विवाद चलता रहा है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार भी काव्यात्मक गहराई और सवेदना की तीव्रता में देव बिहारी से श्रेष्ठतर ठहरते हैं।

कला-पक्ष की दृष्टि से देव की शैली और भाषा के प्रयोगों में लाक्षणिकता और स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति दिखायी देती है। भाषा के प्रयोग में उन्होंने कहीं-कहीं अनुचित स्वच्छन्दता भी दिखायी है, किन्तु छन्दानुरोध से भाषा की तोड़-मरोड़ रीतिकालीन कवियों की प्रवृत्तियों में से ही है। देव ने ब्रजभाषा के साहित्यिक माधुर्य और अभिव्यंजनात्मकता में अनुपम योग दिया है।

पद्माकर :

बाँदा निवासी तैलंग ब्राह्मण मोहनलाल भट्ट के सुपुत्र कवि पद्माकर रीतिकाल के अन्तिम श्रेष्ठ आलंकारिक कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म वि० स० १८१० (सन् १७५३ ई०) में सागर में हुआ और मृत्यु वि० स०

१८९० (सन् १८३३ ई०) में कानपुर में हुई। कविवर देव की भाँति ये भी
अनेक आश्रयदाताओं के यहाँ रहे, किन्तु वैभव-विलास में ये देव से बढ़कर रहे।
इन्हें सितारा के महाराज रघुनाथ राव अप्पा साहब, जयपुर-नरेश प्रतापसिंह,
पन्ना के महाराज हिन्दूपति, गोसाईं अनूपगिरि (उपनाम हिम्मत बहादुर),
उदयपुर के महाराणा भीमसिंह, ग्वालियर के महाराज दौलतराव सिंधिया
आदि की ओर से विपुल सम्मान, दान आदि मिला। पन्ना-महाराज और जयपुर
नरेश से इन्हें अनेक ग्राम भी जागीर में मिले। पन्ना-महाराज के तो ये गुरु भी
रहे। 'जगद्विनोद' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना इन्होंने जयपुर नरेश प्रताप-
सिंह के पुत्र जयसिंह के नाम पर ही की थी। अन्तिम दिनों में रोगग्रस्त रहने
पर इन्होंने 'प्रबोध-पचासा' तथा 'गंगालहरी' की रचना की।

इनके नाम से उपलब्ध ग्रंथों में 'हिम्मत बहादुर विरुदावली', 'पद्म
भरण', 'जगद्विनोद', 'प्रबोध-पचासा', 'गंगालहरी', 'रामरसायन', 'भाष
हितोपदेश', 'ईश्वर-पच्चीसी', 'आलीजाह-प्रकाश', 'प्रतापसिंह विरुदावली' आ
के नाम आते हैं। इन रचनाओं की दृष्टि से ये रीति-शास्त्र के ज्ञाता, शृङ्ग
तथा भक्ति के साथ-साथ वीर रस के समान कवि, मुक्तक एवं प्रबन्ध शैली
सफल रचनाकार सिद्ध होते हैं।

मूल्यांकन अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता, कल्पना-माधुर्य, हाव-
के प्रत्यक्षवत् मूर्तिविधान की दृष्टि से पद्माकर का रीतिकाल के कवि
बहुत ऊँचा स्थान है। "शब्दाडम्बर और ऊहात्मक वैचित्र्य से मुक्त र
चमत्कार-चातुरी के साथ सुघरकल्पना वाले भाव-चित्रों की उपस्थिति,
भावनाओं की व्यंजना शक्ति के द्वारा सजीवता और साकारता के
बड़े कौशल के साथ सजावट, चित्रांकन और विद्वत्ता के एक
निर्वाह के लिए पद्माकर अद्वितीय कहे जा सकते हैं। इनकी रचन
कोमलता और सरसता है। 'हिम्मत-बहादुर विरुदावली' में वीररस
फड़कती अभिव्यक्ति है वह वीरगाथा कालीन कवियों की याद दिला
जगद्विनोद' को तो शुक्ल जी ने शृङ्गार का 'सार-ग्रंथ' कहा है।

भाषा पर इनका अद्भुत् अधिकार था और उसे ये भाव और विषय के अनुकूल बदल सकते थे। पं० रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "कहीं तो इनकी भाषा स्निग्ध मधुर पदावली द्वारा एक सजीव भावभरी प्रेममूर्ति खड़ी करती है, कहीं अनुप्रासों की मिश्रित झंकार उत्पन्न करती है कहीं शौर्य से क्षुब्ध वाहिनी के समान अकड़ती और कड़कती हुई चलती है और कहीं प्रशान्त सरोवर के समान स्थिर और गम्भीर होकर मनुष्य जीवन की विश्रान्ति की छाया दिखाती है।" इनकी भाषा में संस्कृत के साथ-साथ सरसता सुष्ठुता और व्याकरणानुमोदन है और गुणों का पूर्ण निर्वाह है। सवैयों और कवित्तों की लयात्मकता, प्रवाह-प्रवणता और मनोरमता इनके छन्दों की विशेषता है। अनुप्रास और अलंकारों की सजग भरी बाँधने में अद्भुतकार का जोड़ नहीं। आलंकारिक चमत्कार वृत्ति के भी इनके काव्य में दर्शन होते हैं। शृङ्गारोन्मुखता से इन्होंने अलंकारों को एक [illegible] दिया है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त :

परिचय : महाकवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त का जन्म वि० सं० १९४३ (सन् १८८६) में झाँसी जिले के चिरगाँव नामक स्थान में हुआ था। इनके पिता सेठ रामचरण परम भक्त एवं काव्य-प्रेमी थे। बाल्यावस्था में ही कविता करने के कारण इनके पिता ने इन्हें महान कवि होने का आशीर्वाद दिया। इनकी शिक्षा घर पर ही हुई और इन्होंने हिन्दी बंगला मराठी संस्कृत आदि का गम्भीर अध्ययन किया। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रोत्साहन और 'सरस्वती' के माध्यम से ये हिन्दी-जगत् में प्रकाशित हुए। आजन्म राष्ट्र-भारती की अनवरत साधना में रहे। हिन्दी को ४० के लगभग मौलिक और ६ अनूदित ग्रन्थ दिये। 'साकेत' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है जिस पर इन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'साहित्य वाचस्पति' का आगरा विश्वविद्यालय ने डी० लिट्० की सम्मानित उपाधि प्रदान की और भारत सरकार ने 'पद्मभूषण' की उपाधि से इन्हें अलंकृत किया। ये स्वतन्त्र भारत के सर्वप्रथम राष्ट्रकवि

नियत हुए और इसी पद पर रहते हुए दिसम्बर सन् १९६४ में ७८ वर्ष की आयु में साकेतवासी हुये।

श्री गुप्तजी की प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं—'साकेत' 'यशोधरा' 'द्वापर' 'भारत-भारती' 'जयद्रथवध' 'पंचवटी' 'नहुष' 'जयभारत' 'रंग में भंग' 'विकट भट' 'किसान' इत्यादि। 'साकेत' और 'यशोधरा' इनके अति प्रख्यात ाव्य ग्रन्थ हैं।

मूल्यांकन : गुप्तजी की कविता का स्वर भारतीय-संस्कृति का संवाहक है, किन्तु उसमें रूढ़िवादिता नहीं है। वे आदर्श और मर्यादा के गायक होने के साथ-साथ आधुनिक जागृति के पोषक भी रहे। रामभक्ति ने उनके काव्य में भक्ति की तरलता उँडेली तो नवचेतना ने उसमें युग के स्वरों का परिचय दिया। भारतीय संस्कृति के दो त्यागपूर्ण उपेक्षित नारी-पात्रों—उर्मिला और यशोधरा का उद्धार कर उन्हें साहित्य की अमर सृष्टि बनाने का श्रेय गुप्तजी को ही है। 'साकेत' की गणना तो हिन्दी के आधुनिक सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में ही की जाती है, 'यशोधरा' भी उनकी एक उत्कृष्ट कृति है जिसमें नारी की व्यथा की मर्यादा, त्याग और गौरव का स्वर प्रदान किया गया है। देश-भक्ति, राष्ट्रीय संस्कृति और ईश्वरोन्मुखता के साथ-साथ उनके काव्य में आधुनिक युग के मानवतावादी विचारों का भी सामंजस्य है। नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण बड़ा उदार और आदरपूर्ण है। भावों की सरलाभिव्यक्ति में गुप्तजी का जोड़ नहीं। मानव-मन को छूने की अद्भुत् क्षमता उनके काव्य में विद्यमान है।

भाषा, गुप्तजी की विषयानुकूल रही है। छायावादी काव्यमयी भाषा को जनसाधारण तक सम्प्रेषित करने का बहुत बड़ा श्रेय गुप्तजी को है। सरलता और सुबोधता उनकी भाषा के विशेष गुण हैं, यद्यपि कहीं-कहीं तुकबन्दी के कारण यह सरलता खटकने वाली भी सिद्ध हुयी है।

गुप्तजी ने अपनी निरन्तर साधना से हिन्दी के भण्डार को भरा है और इस दृष्टि से उनका स्थान आधुनिक युग के प्रतिनिधि कवियों में है।

जयशंकर प्रसाद :

परिचय— बहुमुखी प्रतिभा के धनी और छायावाद के स्तम्भ कवि, नाटककार 'प्रसाद' का जन्म वि० सं० १९४६ (सन् १८८९ ई०) में काशी के सुप्रसिद्ध घराने 'सुँघनी साहु' के यहाँ हुआ था। इनके पिता देवीप्रसाद प्रसिद्ध व्यापारी और साहित्य-प्रेमी थे। इनकी शिक्षा आठवीं तक ही हो पायी, किन्तु घर पर ही इन्होंने संस्कृत, हिन्दी, फारसी, उर्दू आदि का गम्भीर अध्ययन किया। 'रसमय सिद्ध' इनके प्रमुख गुरु थे। अल्पायु में ही पिता, माता और ज्येष्ठभ्राता की असामयिक मृत्यु ने इन्हें परिवार का उत्तरदायी व्यक्ति बना दिया। दो-दो पत्नियों की मृत्यु, व्यवसाय में हानि, ऋण का बोझ, गृहकलह आदि पारिवारिक संघर्षों को झेलते हुए भी 'प्रसाद' निरन्तर साहित्य-साधना में लगे रहे। बाल्यावस्था से जो काव्य-रुचि जाग्रत हो गयी थी, उसका इनकी साधना ने निरन्तर विकास किया। हिन्दी-साहित्य में प्रथम पदार्पण 'इन्दु' नामक पत्रिका से हुआ। संगीत, चित्रकला और मूर्तिकला में अभिरुचि रही। वेद और उपनिषदों के गम्भीर अध्ययन की छाप उनकी रचनाओं में देखी जा सकती है। अन्तिम दिनों में यक्ष्मा से ग्रस्त हो गये और ४८ वर्ष की आयु में ही हिन्दी साहित्य को प्रतीक्षातुर छोड़ कर वि० स० १९९४ (सन् १९३७) को स्वर्गवासी हो गये।

रचना—क्षेत्र में इन्होंने काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध सभी को अपनी प्रतिभा से आलोकित किया। उनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं–

काव्य—चित्राधार, कानन-कुसुम, करुणालय, महाराणा का महत्त्व, 'झरना' 'प्रेम पथिक' 'आँसू' 'लहर' 'कामायनी'।

नाटक—'सज्जन', 'कामना', 'एक घूँट', 'राज्यश्री', 'अजात शत्रु', 'विशाखदत्त', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी'।

कहानी-संग्रह : 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'इन्द्रजाल', 'आँधी'।

उपन्यास 'तितली', 'कंकाल', 'इरावती' (अपूर्ण)।

निबन्ध-संग्रह . काव्य, कला और अन्य निबन्ध।

मूल्यांकन . प्रसाद एक विकासमान व्यक्तित्व के कलाकार थे। वे मुख्यतया गहन अनुभूति के रचनाकार थे। उनका समस्त साहित्य मानवीय और सांस्कृतिक भूमिका पर प्रतिष्ठित है। प्रेम और सौन्दर्य का उदात्त स्वरूप इनके काव्य की प्रमुखता है। छायावाद के रोमानी काव्य ने पूरे एक युग को अपने सम्मोहक और आकर्षण में बाँध लिया था और 'प्रसाद' के साहित्य में उसका अत्यन्त निखरा हुआ रूप मिलता है। यही कारण है कि आज भी युवा-हृदयों को 'प्रसाद' का साहित्य जितना मर्मस्पर्शी लगता है उतना और किसी का नहीं। 'कामायनी' में उनका युगबोध मानवीय धरातल को लेकर आया है तो उनके नाटकों में भारतीय संस्कृति का आदर्श प्रतिष्ठित हुआ है छायावादी काव्य के प्रमुख गुण, अनुभूति की गहनता, लाक्षणिक शैली, गीतिमयता, प्रेमानुभूति, सौन्दर्य-चेतना, कल्पना-तत्त्व, सांस्कृतिक भावना, आदर्शवादी दृष्टि, रोमानी अभिव्यक्ति आदि सभी 'प्रसाद' काव्य में अपने चरम बिन्दु पर मिलते हैं। वे मुख्यत कवि थे और गहन कवि थे, अनुभूति के, इसलिये उनके नाटकों, कहानियों, उपन्यासों और निबन्धों में भी उनका कवि-हृदय मुखरित रहा है। प्रसाद ने भाव के जिस भी क्षेत्र को अपनी तूलिका से छूआ, उसे अत्यन्त संवेदनात्मक और सम्प्रेषणीय बना दिया।

शिल्प की दृष्टि से प्रसाद मौलिक कलाकार थे। प्रांजल, भावोपयुक्त प्रसाद की भाषा हिन्दी साहित्य-प्रेमियों के लिए विशेष आकर्षण का कारण बनी रही है। यद्यपि कुछ लोग उस पर दुर्बोधता और दार्शनिकता का लांछन लगाते हैं, किन्तु इतनी सुष्ठु, सुगठित, प्रवाहपूर्ण, सशक्त अभिव्यंजनात्मक भाषा और किसी कवि की देखने में नहीं आती।

वस्तुत. 'प्रसाद' आधुनिक हिन्दी-साहित्य में एक अद्वितीय स्थान रखते ।र छायावादी युग के सर्वश्रेष्ठ महाकवि माने जाते हैं।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' :

परिचय : क्रान्तिकारी और विद्रोही तत्वों से निर्मित व्यक्तित्व के धनी छायावादी महाप्राण कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म वि० स० १६५३ (सन् १८६६) की बसन्तपचमी को महिपादल, स्टेट मेदनीपुर (बंगाल) में हुआ। इनके पिता श्री रामसहाय तिवारी मूलत गढ़ाकोला, जिला उन्नाव (म० प्रान्त) के निवासी थे, *किन्तु जीविकोपार्जन के लिए बंगाल चले गये थे।* बचपन में ही माता के वियोग और पिता के क्रोधी स्वभाव के कारण 'निराला' विद्रोही और निर्भीक हो गये। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् सस्कृत, बंगला और अंग्रेजी का विशेष अध्ययन इन्होंने घर पर ही किया। हाईस्कूल में ही इनकी रुचि दार्शनिक हो गई। १६–१७ वर्ष की आयु में पिता भी चल बसे। स्वाभिमानी निराला महिपादल की नौकरी भी थोड़े ही समय तक कर सके। युवावस्था में ही एक पुत्र और एक पुत्री को छोड़ कर मृत्यु-मुख में जाने वाली इनकी पत्नी ने इन्हें भारी आघात पहुँचाया। पत्नी मनोहरा देवी के माध्यम से ही ये खड़ी बोली हिन्दी के क्षेत्र में आये थे। विपत्ति ने फिर भी पीछा नहीं छोड़ा और उनकी प्रिय पुत्री सरोज भी मृत्यु को भेंट हो गयी, जिसकी स्मृति में 'सरोज-स्मृति' नामक शोक-काव्य लिखा गया।

स्वाभिमानी और स्वतन्त्र विचारधारा के होने के कारण निराला को आर्थिक और सामाजिक सकट भी बहुत सहन करने पड़े। महिपादल की *नौकरी छोड़कर, रामकृष्ण मिशन के पत्र 'समन्वय' और फिर हिन्दी पत्र* 'मतवाला' में सपादन-कार्य किया। 'जूही की कली' इनकी प्रथम प्रकाशित हिन्दी रचना है जो 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के द्वारा बिना प्रकाशित किये ही लौटा दी गई थी। धीरे-धीरे निराला ने साहित्य-क्षेत्र में अपना स्थान बनाया और एक के बाद एक अनोखी रचनाएँ भेंट करते रहे। जीवन के अन्तिम दिनों में निरालाजी विक्षिप्त से हो गये थे, किन्तु साहित्य-सर्जना चलती रही। सन् १६६१ (स० २०१८) को अन्ततः यह महान् आत्मा पचत्व में विलीन हो गयी।

इनकी प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं :—

काव्य-संग्रह : परिमल, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका, अपरा, अणिमा, वेला, कुकुरमुत्ता, नये पत्ते आदि ।

उपन्यास : अप्सरा, अलका, निरुपमा, उच्छृंखला, चोटी की पकड़, काले कारनामे, चमेली ।

कहानी-संग्रह . लिली, सखी, चतुरी चमार, सुकुल की बीवी ।

रेखाचित्र : कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा ।

निबन्ध-संग्रह : प्रबन्ध-पद्म, प्रबन्ध-प्रतिमा, प्रबन्ध-परिचय, रवीन्द्र-कविता-कानन ।

इनके अतिरिक्त अनेक जीवनियाँ और अनूदित कृतियाँ हैं ।

मूल्यांकन · 'निराला' जी का जीवन अत्यन्त संघर्षमय रहा । आर्थिक सामाजिक, साहित्यिक, दैविक सभी प्रकार के संकटों से जूझता हुआ यह विद्रोही व्यक्तित्व अन्त तक नहीं झुका और हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय स्थान बना गया । भाव और शिल्प दोनों ही क्षेत्रों में इसने अभिनव प्रयोग किये और अपने व्यक्तित्व की छाप जमा दी । 'वह तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक' 'जूही की कली', राम की शक्ति पूजा', 'सरोज स्मृति' जैसी सशक्त, प्रौढ़ और अभिव्यंजनापूर्ण रचनाओं के निर्माता का मूल्यांकन हिन्दी-साहित्य अभी पूरी तरह कर भी नहीं पाया है । उन्होंने सड़ी-गली रूढ़ियों और प्रतिक्रियावादी तत्त्वों से विद्रोह किया और यह विद्रोह हर क्षेत्र में एक नया निखार देता चला गया । मुक्त-छन्द-कविता के जनक के रूप में निराला का नाम लिया जाता है । भाषा पर उनका अबाध अधिकार था । परुष और कोमल सभी प्रकार की शैली के वे कुशल प्रणेता थे । निराला के बलिदान का मूल्यांकन करते हुए हिन्दी-साहित्य कोश में लिखा है—"मध्यम श्रेणी में उत्पन्न होकर परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से मोर्चा लेता हुआ आदर्श के लिए सब कुछ उत्सर्ग करने वाला महापुरुष जिस मानसिक स्थिति को पहुँचा, उसे बहुत से लोग व्यक्तित्व

की अनुशंसा करते हैं, पर जहाँ व्यक्ति के आदर्शों और सामाजिक हीनताओं में निरन्तर संघर्ष हो, वहाँ व्यक्ति का ऐसी स्थिति में पड़ना स्वाभाविक ही है। हिन्दी की ओर से 'निराला' को यह बलि देनी पड़ी।"

सुमित्रानन्दन पंत :

परिचय : कूर्माञ्चल प्रदेश के अल्मोड़ा जिलान्तर्गत कौसानी ग्राम में वि० सं० १९५७ (सन् १९००) में प्रकृति के सुकुमार कवि पंत का जन्म हुआ। इनका बचपन का नाम गोसाईंदत्त था, पिता का पं० गंगादत्त और माता का नाम सरस्वतीदेवी। कवि बचपन से ही मातृहीन हो गया और कूर्माञ्चल की प्रकृति में ही माँ को ढूँढने लगा। प्रारम्भिक शिक्षा कौसानी में, हाईस्कूल की वाराणसी में और तत्पश्चात् इन्होंने म्योर सेंट्रल कालेज प्रयाग में प्रवेश लिया, किन्तु सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर शिक्षा अधूरी छोड़ दी।

बचपन से ही कविता की ओर झुकाव था। सात वर्ष की आयु में ही कुछ छन्द-रचना कर डाली थी, पर वास्तविक कवि-कर्म का आरम्भ सन् १९१८ में हुआ। काशी में ही सरोजनी नायडू, कवीन्द्र रवीन्द्र तथा अंग्रेजी की रोमांटिक कविताओं से परिचय हुआ। 'सरस्वती' में प्रकाशित होते रहे और धीरे-धीरे हिन्दी जगत् में प्रकृति के सुकुमार कवि के रूप में निखर उठे। अनेक कृतियों पर पुरस्कार प्राप्त हो चुका है और भारत सरकार ने इन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया है। 'चिदम्बरा' काव्य-संचयन पर 'ज्ञान पीठ' ने एक लाख रुपये का पुरस्कार दिया है। अपने इस ७० वें वसंत में भी कवि की वाणी शिथिल नहीं हुयी है।

पन्तजी की प्रमुख कृतियाँ निम्नलिखित हैं :

काव्य : वीणा, ग्रन्थि, उच्छ्वास, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, रजत-शिखर, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद तथा लोकायतन।

नाटक : परी, क्रीडा, रानी, ज्योत्स्ना।

उपन्यास . हार ।

कहानी-संग्रह . पांच कहानियाँ ।

आत्मकथा · साठ वर्ष : एक रेखांकन ।

अनुवाद : मधुज्वाल (उमर खैयाम की रुबाइयों का हिन्दी रूपांतर ।)
नके अतिरिक्त इनकी चुनी हुयी कविताओं के चार सचयन भी प्रकाशित है—
. रश्मि बंध, २ आधुनिक कवि, ३. पल्लविनी, ४. चिदम्बरा ।

मूल्यांकन · पंत छायावाद के स्तम्भ कवियों मे से हैं । कोमल और
कुमार *प्रकृति का रेखाङ्कन पन्त के छायावादी कवि की विशेषता है । प्रकृति*
ो उन्होंने नाना रूपों में देखा और *उसके साथ गहरा तादात्म्य स्थापित किया ।*
स क्षेत्र मे पंत बेजोड़ हैं । *किन्तु वे प्रकृति सौन्दर्य मे ही नहीं डूबे रहे ।*
गतिवादी काव्य मे सामाजिक न्याय की आवाज भी उठाई और मानवतावाद
ो लेकर वे विश्व-बन्धुत्व की ओर अग्रसर हुए । उनका सम्पूर्ण कृतित्व हिन्दी-
ाहित्य की आधुनिक चेतना का प्रतीक है और उसमे मानव-जीवन मूल्यों की
ोर अग्रसर होने की प्रेरणा है । युगानुकूल सामाजिक, भौतिक, नैतिक और
ानवीय पहलुओं के साथ-साथ उसमे गम्भीर दार्शनिक चिन्तना के स्वर भी
। कवि की अन्तर्राष्ट्रीय चेतना में सार्वभौम मानवता का जयगान है ।
ोकायतन' लिखकर कवि ने एक विस्तृत भाव-भूमि का सृजन किया है ।
ानव-जीवन को देखने, समझने और नया बल देने की परिष्कृत दृष्टि
पन्त के पास है ।

भाषा पर पन्त का असाधारण अधिकार है । शब्द-विन्यास की दृष्टि
से पन्त एक कुशल शिल्पी हैं जो शब्दो का प्रयोग गढकर, उन्हें तोलकर,
काट-छाँटकर करते हैं । अलकारो को वे वाणी के हास्, अश्रु, स्वप्न, पुलक्
हाव-भाव मानते है । उनकी कविता मे इसका प्रमाण मिलता है ।

काव्य के अतिरिक्त गद्य-क्षेत्र मे भी पन्त नाटककार, कहानीकार,
मीक्षक, निबन्धकार तथा उपन्यासकार के रूप मे हिन्दी साहित्य मे आदर
। किन्तु इन सबमें उनका कवि ही सर्वाधिक मुखर और प्रिय रहेगा ।

श्रीमती महादेवी वर्मा :

परिचय : आधुनिक युग की मीरा-विरहिणी कवयित्री महादेवी वर्मा छायावादी स्तम्भों में से एक है। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद नगर में वि० स० १९६४ (सन् १९०७ ई०) में एक सुसम्पन्न परिवार में हुआ था। पिता श्री गोविन्दसहाय वर्मा इन्दौर कॉलेज में प्राध्यापक थे, अत: प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में ही हुई। फिर प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० और बाद में संस्कृत में एम० ए० किया। वहीं ये प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्य हो गई और तब से अब तक वहीं काम करती चली आ रही हैं। उच्च शिक्षा और काव्य के अतिरिक्त आपकी रुचि चित्रकला, संगीत, दार्शनिक चिन्तन-एकाकी विचरण और पर-सेवा में है। भारत सरकार ने आपको 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया है।

काव्य-प्रतिभा का विकास पहले ब्रजभाषा में और तदुपरात खड़ी बोली में हुआ। माँ से सुनी एक करुण कथा को आधार बना कर लगभग १०० छन्दों का एक खण्ड काव्य विद्यार्थी जीवन में ही लिख दिया था। उनका प्रथम काव्य संग्रह 'नीहार' सन् १९३० में छपा। कुल पाँच काव्य-संग्रह हैं—(१) नीहार, (२) रश्मि, (३) नीरजा, (४) सान्ध्य गीत और (५) दीपशिखा। 'यामा' उनके प्रथम चार काव्य-संग्रहों की कविताओं का संग्रह है और "आधुनिक कवि" उन्हीं के द्वारा उनके समस्त काव्य में से चुनी हुयी कविताओं का संकलन है। गद्य-लेखिका के रूप में भी ये प्रख्यात हैं और 'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीत के चलचित्र', 'शृंखला की कड़ियाँ' आदि गद्य कृतियों और 'दीपशिखा', 'यामा' तथा 'आधुनिक कवि—महादेवी' की भूमिकाओं में उनके प्रौढ़ गद्य-लेखन का परिचय मिलता है।

मूल्यांकन : महादेवी वर्मा मूलतः दर्द, अव्यक्त वेदना और पीड़ा की गायिका है जिसमें उन्होंने अपने स्वर को ईश्वरोन्मुख करके रहस्यवादी बना लिया है। उनके विरह के गीतों में दुःख का गीलापन है, आत्मा की आकुल

पुकार है, असीम वेदना का क्रन्दन है। उन्होंने स्त्रीजनोचित प्रणयानुभूति व इस मार्मिकता और संवेदना के साथ प्रस्तुत किया कि सूफी सन्तों और भारतीय रहस्यवादी कवियों के स्वर से भी उनका स्वर दर्दीला बन गया। यद्यपि उनकी काव्य-भूमि विस्तृत नहीं है, क्योंकि विषयों की विविधता उसमें बहुत कम है किन्तु उसमें भावात्मक गहराई और अनुभूति की सूक्ष्मता अपनी चरम सीमा पर है। इसलिए उनका काव्य विस्तार का नहीं, गहराई का है।

भाषा में मधुरता, सौष्ठव, भावानुकूलता और मार्दव है। अलंकार भावों के पोषक होकर आये हैं। छन्द की दृष्टि से महादेवी गीत-गायिका है। उनके गीतों में झंकार, संगीतात्मकता और गतिशीलता है। हिन्दी-साहित्य की कवयित्रियों में तो महादेवी का स्थान बहुत ऊँचा है ही, आधुनिक युग के *कवियों में भी वे अग्रपंक्ति में स्थान पाने की अधिकारिणी हैं।*

'तार सप्तक' और उसके कवि

"प्रयोगवाद का प्रारम्भ 'तार सप्तक' के प्रकाशन से माना जाता है इसका 'प्रकाशन' अज्ञेय के सम्पादकत्व में सन् १९४३ में हुआ। सन् १९६१ में इसका दूसरा संस्करण भी निकल चुका है।

इस संकलन के कवि ये हैं—

१. गजानन माधव मुक्तिबोध, २. नेमिचन्द्र जैन, ३. भारतभूषण अग्रवाल, ४. प्रभाकर माचवे, ५. गिरिजाकुमार माथुर, ६. रामविलास शर्मा और ७. अज्ञेय।

काव्य की धारा के सन्दर्भ में अज्ञेय ने लिखा है "इससे यह परिणाम न निकाला जाये कि वे कविता के किसी एक 'स्कूल' के कवि है" अर्थात् इनकी स्वतन्त्र काव्य-धारा है।

प्रस्तुत संकलन में कवियों का अनुक्रम इस प्रकार से रखा है—

१. अज्ञेय, २. गिरिजाकुमार माथुर, ३. गजानन माधव मुक्तिबोध, ४ रामविलास शर्मा, ५. प्रभाकर माचवे, ६. भारत भूषण अग्रवाल और ७. नेमिचन्द्र जैन। यहाँ इसी क्रम से इनका परिचय दिया जा रहा है :

अज्ञेय १

इनका पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन, उपनाम अज्ञेय है। जन्म सं० १६११, एक शिविर मे हुआ। स्वतन्त्रता-आन्दोलन मे क्रान्तिकारी रहे, जेल भी गये। 'आल इण्डिया रेडियो' में नौकरी की, 'सैनिक', 'विशाल भारत', 'प्रतीक', 'बिजली', 'दिनमान' आदि का सम्पादन किया।

प्रमुख कृतित्व : काव्य के क्षेत्र मे भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम्, इन्द्रधनु रौंदे हुए, बावरा अहेरी, हरी घास पर क्षणभर और आँगन के पार द्वार।

उपन्यासो मे 'शेखर एक जीवनी' दो भाग, 'नदी के द्वीप' और 'अपने-अपने अजनबी'। इनके अतिरिक्त कहानी-संग्रह, भ्रमण-वृतान्त, आलोचना तथा सम्पादित ग्रन्थ भी बहुत हैं।

मूल्यांकन नये लेखन के अज्ञेय नेता हैं। 'प्रयोगवाद', 'नई कविता' जैसी धारा का नेतृत्व अज्ञेय ने ही किया है। इसको नई दिशा और गति देने का श्रेय अज्ञेय को है। नवीन भाव भूमि, बौद्धिक अनुभूति, नवीन प्रतीक व बिम्ब योजना, शिल्प-वैचित्र्य अज्ञेय के काव्य की विशेषताएँ हैं।

गिरिजाकुमार माथुर २

इनका जन्म सन् १६१८ मे मध्य प्रान्त के एक कस्बे मे हुआ। लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य मे एम. ए तथा एल-एल. बी किया। कुछ समय वकालत की, दिल्ली सेक्रेटेरियेट मे काम किया। अब आकाशवाणी मे है।

कृतित्व : 'मंदार', 'मंजीर', 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान', 'शिलापंख चमकीले' आदि प्रकाशित काव्य संग्रह हैं।

मूल्यांकन : यों श्री माथुर ने विषय की अपेक्षा टेक्नीक पर ध्यान दिया है, किन्तु पुराने विषयो को भी नवीन ढग से प्रस्तुत करने मे आपको विशेष सिद्धि है। रोमानी कविताओ मे छोटी और मीठी ध्वनियों वाले शब्द पसन्द हैं। मुक्त-छन्द की कविता ही अधिक पसन्द करते हैं। स्वर-ध्वनियो के अच्छे गूँजते हुए प्रयोग किये हैं।

पुकार है, असीम चेतना का क्रन्दन है। उन्होंने स्त्रीजनोजित प्रणयानुभूति को इस *मार्मिकता और संवेदना के साथ प्रस्तुत किया कि सूफी सन्तो और भारतीय* रहस्यवादी कवियों के स्वर मे भी उनका स्वर दर्दीला बन गया। यद्यपि उनकी काव्य-भूमि विस्तृत नही है, क्योकि विषयो की विविधता उसमे बहुत कम है, किन्तु उसमें भावात्मक गहराई और अनुभूति की सूक्ष्मता अपनी चरम सीमा पर है। इसलिए उनका काव्य विस्तार का नही, गहराई का है।

भाषा मे मधुरता, सौष्ठव, भावानुकूलता और मार्दव है। अलकार भावो के पोषक होकर आये हैं। छन्द की दृष्टि से महादेवी गीत-गायिका है। उनके गीतो मे झकार, लयात्मकता और गतिशीलता है। हिन्दी-साहित्य की कवयित्रियो मे तो महादेवी का स्थान बहुत ऊँचा है ही, आधुनिक युग के कवियो मे भी वे अग्रपक्ति मे स्थान पाने की अधिकारिणी हैं।

'तार सप्तक' और उसके कवि

"प्रयोगवाद का प्रारम्भ 'तार सप्तक' के प्रकाशन से माना जाता है इसका 'प्रकाशन' अज्ञेय के सम्पादकत्व मे सन् १९४३ मे हुआ। सन् १९६१ मे इसका दूसरा सस्करण भी निकल चुका है।

इस सकलन के कवि ये है—

१. गजानन माधव मुक्तिबोध, २. नेमिचन्द्र जैन, ३. भारतभूषण अग्रवाल, ४. प्रभाकर माचवे, ५. गिरिजाकुमार माथुर, ६. रामविलास शर्मा और ७. अज्ञेय।

काव्य की धारा के सन्दर्भ मे अज्ञेय ने लिखा है "इसमे यह परिणाम *न निकाला जाये कि वे कविता के किसी एक 'स्कूल' के कवि हैं" अर्थात् इनकी*" स्वतन्त्र काव्य-धारा है।

प्रस्तुत सकलन मे कवियो का अनुक्रम इस प्रकार से रखा है—

१. अज्ञेय, २. गिरिजाकुमार माथुर, ३. गजानन माधव ४. रामविलास शर्मा, ५. प्रभाकर माचवे, ६. भारत भूषण ७. नेमिचन्द्र जैन। यहाँ इसी क्रम से इनका परिचय दिया

साथ ही खेती, किसान के प्रति सहानुभूतिपूर्ण और क्रान्तिकारी दृष्टिकोण व्यक्त होता है। भाषा में गठन, शब्दों में सशक्त अभिव्यक्ति के साथ विचारों में क्रान्ति का स्वर है। जीवन को एक स्वस्थ दृष्टिकोण से देखने की जिज्ञासा है।

प्रभाकर माचवे ५

सन् १९१७ को ग्वालियर में जन्म हुआ। कॉलेज-शिक्षा आगरे पायी। १९३६ में दर्शनशास्त्र तथा १९४१ में अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० किया। उज्जैन में तर्क शास्त्र के अध्यापक रहे। ६ वर्ष तक इलाहाबाद, नागपुर, दिल्ली, आकाशवाणी में रहे। आठ वर्ष तक साहित्य-अकादमी के सहायक मन्त्री रहे। अमेरिका भी गये। अब लोक-सेवा आयोग से सम्बद्ध है। 'निर्गुण मराठी हिन्दी सन्त-काव्य पर पी-एच० डी० की उपाधि मिली।

कृतियाँ : 'स्वप्न भंग', 'अनुक्षण', 'तेल की पकौड़ियाँ', 'कविता-संग्रह, 'खरगोश के सींग' और 'बेरंग' निबन्ध-संग्रह तथा 'परन्तु' उपन्यास प्रकाशित कृतियाँ हैं।

मूल्यांकन : आधुनिक कविता को छायावादी और प्रगतिवादी नारों के घेरे से निकालने में रुचि रखते हैं। वस्तु की दृष्टि से विविधता, व्यंग्य के पैनेपन और मूर्तिपूर्ण प्रयोग, प्रकृति के सम्बन्ध में अधिक वैज्ञानिक दृष्टि, जनजीवन के निकटतम जाकर ग्रामगीत, लोककथाएँ, सशक्त मुहावरेदार शब्दावली, कल्पना-चित्रों और प्रयोगशील अभिव्यंजना के प्रति आकृष्ट हैं। भाषा की अभिधा शक्ति की अपेक्षा व्यंजनाशक्ति पर अधिक श्रद्धा है। प्रकृति चित्रण में व्यंग्यचित्र इनकी विशेषता है।

भारतभूषण अग्रवाल ६

अगस्त १९१९ में मथुरा में जन्म। मथुरा, चन्दौसी और आगरा में शिक्षा पायी। १९४१ में एम० ए० किया। कुछ दिनों कलकत्ते में नौकरी की फिर हायरस मिल में काम किया। 'प्रतीक' में इलाहाबाद में सम्पादन का किया, 'आकाशवाणी' में भी काम किया। अब साहित्य-अकादमी में सहायक मन्त्री हैं।

गजानन माधव मुक्तिबोध ३

ग्वालियर के एक कस्बे में सन् १९१७ को आपका जन्म हुआ। पिता पुलिस सब-इन्सपेक्टर थे। अतः बदली के कारण पढ़ाई का सिल-सिला जुड़ता-टूटता रहा। १९३८ में बी. ए. किया। शिक्षक, पत्रकार, फिर शिक्षक इस तरह नौकरियाँ करते रहे, छोड़ते रहे। १९६४ के ११ सितम्बर को लम्बी बीमारी के पश्चात् स्वर्गवासी हो गये।

कृतित्व . कविता सग्रह 'चाँद का मुँह टेढा है'।

निबन्ध संग्रह : एक साहित्यिक की डायरी।

अन्य . भारत इतिहास और सस्कृति।

मूल्यांकन : शुद्ध शब्द-चित्रात्मक कविता की प्रवृत्ति रही। काव्य में भिन्न-भिन्न काव्य रूपों को स्थान देने की प्रवृत्ति। काव्य मे गत्यात्मकता शब्दो से उभारते हैं। भावबोध को भी महत्त्व दिया है। व्यक्तिवादी स्वर होते हुए भी मानव में विश्वास है।

डॉ० रामविलास शर्मा ४

शिक्षा लखनऊ विश्वविद्यालय मे पाई, वही अग्रेजी साहित्य मे डॉक्टर की उपाधि पाई। कुछ वर्ष वहीं अध्यापन भी किया। फिर राजपूत कॉलेज, आगरा मे प्राध्यापक रहे, 'समालोचक' पत्र का सम्पादन भी किया।

डॉ० शर्मा कवि से अधिक समालोचक है। कविता कम लिखी है, कहते हैं उसमे मेहनत पडती है, पर शायद उनका आलोचक उनके कवि पर हावी हो जाता है। प्रगतिवादी आलोचको मे आपका अग्र स्थान है। 'प्रेमचन्द' 'भारतेन्दु युग', 'निराला' आदि उच्चकोटि के आलोचना ग्रन्थों के अतिरिक्त गद्य और पद्य कई पत्र-पत्रिकाओ मे छप चुके है।

मूल्यांकन : कवि के रूप मे ग्रामीण चित्रण अच्छा कर पाये हैं। 'तारसप्तक' की कविताओं में से अधिकाश का सम्बन्ध छायावादी कविताओं ...र कवियो से है किन्तु ग्रामीण-जीवन से उनका भी सम्पर्क बना हुआ है।

साथ ही सेनी, किसान के प्रति सहानुभूतिपूर्ण और क्रान्तिकारी दृष्टिकोण व्यक्त होता है। भाषा में गठन, शब्दों में सशक्त अभिव्यक्ति के साथ विचारों में शान्ति का स्वर है। जीवन को एक स्वस्थ दृष्टिकोण से देखने की जिज्ञासा है।

प्रभाकर माचवे ५

सन् १९१७ को ग्वालियर में जन्म हुआ। कॉलेज-शिक्षा आगरे पायी। १९३९ में दर्शनशास्त्र तथा १९४१ में अंग्रेजी साहित्य में एम० ए० किया। उज्जैन में तर्क शास्त्र के अध्यापक रहे। ६ वर्ष तक इलाहाबाद, नागपुर, दिल्ली, आकाशवाणी में रहे। आठ वर्ष तक साहित्य-अकादमी के सहायक मन्त्री रहे। अमेरिका भी गये। अब लोक-सेवा आयोग से सम्बद्ध हैं। 'निर्गुण मराठी हिन्दी सन्त-काव्य पर पी-एच० डी० की उपाधि मिली।

कृतियाँ : 'स्वप्न भंग', 'अनुक्षण', 'तेल की पकौड़ियाँ', 'कविता-संग्रह, 'खरगोश के सींग' और 'बेरंग' निबन्ध-संग्रह तथा 'परन्तु' उपन्यास प्रकाशित कृतियाँ हैं।

मूल्यांकन : आधुनिक कविता को छायावादी और प्रगतिवादी नारों के घेरे से निकालने में रुचि रखते हैं। वस्तु की दृष्टि से विविधता, व्यंग्य के तीक्ष्ण और सुरुचिपूर्ण प्रयोग, प्रकृति के सम्बन्ध में अधिक वैज्ञानिक दृष्टि, जनजीवन के निकटतम जाकर ग्रामगीत, लोककथाएँ, सशक्त मुहावरेदार शब्द-रूपों, कल्पना-चित्रों और प्रयोगशील अभिव्यंजना के प्रति आकृष्ट हैं। भाषा की अभिधा शक्ति की अपेक्षा व्यंजनाशक्ति पर अधिक श्रद्धा है। प्रकृति चित्रण में ध्वनिबिम्ब इनकी विशेषता है।

भारतभूषण अग्रवाल ६

सन् १९१९ में मथुरा में जन्मे। मथुरा, चन्दौसी और आगरा में शिक्षा पायी। १९४१ में एम० ए० किया। कुछ दिनों कलकत्ते में नौकरी की, फिर हिन्दुस्तान मित्र में काम किया। 'प्रतीक' में इलाहाबाद में सम्पादन कार्य किया, 'आकाशवाणी' में भी काम किया। अब साहित्य-अकादमी में सहायक मन्त्री हैं।

कविता-संग्रह—'जागते रहो', 'मुक्ति मार्ग', 'श्रो अप्रस्तुत मन' तथा 'अनुपस्थित लोग'—एक उपन्यास "लौटती लहरो की बांसुरी ।"

मूल्यांकन· साम्यवादी धारा के पोषक ही नही, साम्यवाद को आज के समाज के लिए रामबाण मानते रहे, किन्तु अब विचारधारा बदल गयी है । काव्य मे साम्यवाद की छाप है जरूर । स्वय के अनुसार "मेरी कविता ने भावों का उत्थान नही दिया, न उसने मेरे हृदय का परिष्कार किया । दूषित समाज ने मुझे जो असामाजिक कमजोरियाँ और गलित स्वार्थ दान दिये, मेरी कविता ने उन्ही की पीठ ठोकी" कविता को अस्त्र समझा था, किन्तु स्वय अस्त्र बन जाने की पीडा को 'श्रो अप्रस्तुत मन' में व्यक्त किया । व्यग्यात्मकता शोषण के प्रति विद्रोह, क्रांति की ललकार भाषा मे चलता मुहावरापन, अंग्रेजी के शब्दों का विना हिचक के प्रयोग आपके काव्य की विशेपता है ।

नेमिचन्द्र जैन ७

श्री जैन का जन्म सन् १९१८ मे आगरे मे हुआ । वही शिक्षा पायी । सन् १९४१ मे एम-ए० किया । कलकत्ते मे मारवाडी दफ्तर मे किरानी की नौकरी की । ३ वर्ष बम्बई मे एक नृत्य-मण्डली के साथ रहे, 'प्रतीक' का सहसम्पादन किया, संगीत-नाटक अकादमी से सम्बद्ध रहे, अब अकादमी के अधीन नाट्य-विद्यालय मे नाटय-साहित्य पढाते है । साम्यवाद की ओर झुकाव ही नहीं रहा, लगाव भी रहा है ।

कृतित्व—अनुवाद कार्य अधिक किया । पुस्तकाकार मौलिक प्रकाशन नही हुआ, किन्तु आलोचना और कविता इधर-उधर काफी छपती रही ।

मूल्यांकन · इनकी कविताओ मे अधिकाश की मानसिक पृष्ठभूमि में संक्रांति के रगो की प्रधानता रही है । सस्कार और विवेक की कशमश की ... । इन कविताओ का विषय है । सौन्दर्यानुभूति कवि की काफी गहरी है । ... सुन्दर उपस्थित करते हैं । कविता मे गीतात्मकता, वैयक्तिक अनुभूति ... रेखाकन है ।

कृपाराम बारहठ

बारहठ कृपाराम खिड़िया शाखा के चारण थे और जोधपुर राज्य के अन्तर्गत खराड़ी ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम जगराम बारहठ था। कृपाराम जब बड़े हुए तो सीकर के रावराजा लक्ष्मणसिंह के आश्रम में चले गये और अन्त तक वहीं रहे। 'कृपाराम की ढाणी' नाम से प्रसिद्ध ग्राम इन्हें इनाम में मिला हुआ था।

इनका रचना काल वि० सं० १८६५ के आसपास बताया जाता है। रचनाओं की दृष्टि से अपने चाकर राजिया को सम्बोधित कर लिखे गये १७५ सोरठों, कुछ फुटकर दोहों-सोरठों के अतिरिक्त 'चालक नेसी' नामक एक नाटक और अलंकारों का एक ग्रन्थ आदि का नाम भी लिया जाता है जिसमें नाटक और अलंकार ग्रन्थ का कुछ पता नहीं लगा। 'राजिया रा दूहा' नाम से इनके सोरठे बहुत प्रसिद्ध है।

मूल्यांकन : यद्यपि कृपाराम का काव्य परिमाण की दृष्टि से बहुत कम है, किन्तु 'राजिया रा दूहा' नामक सोरठों में जो जीवनानुभूति, मार्मिक व्यंग्य और अनुभव सम्बन्धी गहरी पैठ के दर्शन होते हैं, उसके कारण इनके सोरठे बहुत प्रसिद्धि पा गये हैं। सरल, प्रसादगुणपूर्ण और मुहावरेदार भाषा के कारण ये सोरठे सामान्य जनता के मर्म को शीघ्र छू लेने वाले सिद्ध हुए है।

महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण

मीसण सूर्यमल्ल को चारण लोग सबसे बड़ा चारण कवि मानते है। इनका जन्म वि० सं० १८७२ कार्तिक कृष्णा गुरुवार को बूँदी में हुआ था। इनके पिता चंडीदानजी पिंगल और डिंगल के बड़े विद्वान् और कवि थे। इनकी माता का नाम भवान बाई था। सूर्यमल्ल स्वाभिमानी, स्वतन्त्रताप्रिय, वीर, बहुमुखी प्रतिभावान व्यक्ति थे।

श्री मिश्रण बूँदी के रावराजा रामसिंह के दरबार की शोभा थे और उन्ही के लिए उन्होंने 'वंश भास्कर' नामक महाग्रन्थ की रचना की। दरबार में इनका बहुत अधिक सम्मान था और इनकी कविता लिखने के लिए चार-चार लेखक नियुक्त रहते थे। इनका व्यक्तित्व भी बड़ा प्रभावशाली था, वे साक्षात् वीररस के अवतार प्रतीत होते थे। इनकी मृत्यु आषाढ़ वदी ११, वि० सं० १९२५ को हुई।

इनकी काव्य-कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

१. वंश-भास्कर, २. वीर सतसई (अपूर्ण), ३. बलवन्त विलास, ४. छन्दो मयूख, ५ रामरजाट, ६. सती रासो, ७. धातु रूपावली ८. फुटकर छन्द। इनमें 'वंश भास्कर' राजस्थान के और विशेषकर बूँदी के राजाओं का काव्य-बद्ध इतिहास है। इनकी 'वीर सतसई' में यद्यपि २८८ दोहे ही हैं, किन्तु यह वीर रस का उत्कृष्ट काव्य है। इस संकलन में 'वीर सतसई' के दोहों में से ही कुछ उत्कृष्ट दोहे संकलित किये गये हैं।

मूल्यांकन : राजस्थानी काव्य में सूर्यमल्ल मिश्रण और उनकी वीर-सतसई का बहुत उत्कृष्ट स्थान है। 'वंश भास्कर' तो उनका महाग्रन्थ है ही, किन्तु वीर-सतसई के कारण सूर्यमल्ल अमर हो गये हैं। चारण-कवियों में तो सूर्यमल्ल सर्वश्रेष्ठ कवि माने ही जाते हैं, वीररस के कवियों में भी इनका नाम अग्र-पंक्ति में आता है। इस बहुमुखी प्रतिभा के कवि ने सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम में अपनी वीरवाणी से नवीन रक्त का संचार किया। भाषा में अद्भुत ओज और मुर्दों में प्राण फूँकने वाली शक्ति है।

श्री नानूराम संस्कर्ता

बीकानेर के समीप कालू ग्राम में जन्मे। श्री संस्कर्ता एक प्रतिभाशाली कलाकार एवं सफल अध्यापक हैं। मोहक सज्जनता और मृदु व्यवहार के साथ श्रम-शीलता आपकी विशेषता है। काव्य-रचना, अध्ययन और अध्यापन के साथ-साथ कृषि में भी मनोयोग से समय देते हैं। विशारद, साहित्य-रत्न के

मूल्यांकन:—श्री सेठिया राजस्थानी के नवोदित गिने-चुने काव्य-कारों मे है। आपकी वाणी मे राजस्थानी का माधुर्य एव ओज विद्यमान है। 'पातल और पीथल' आपकी बहुचर्चित लोक-प्रिय रचना है जिसमें महाराणा-प्रताप और पृथ्वीराज राठौड़ के वार्तालाप को बड़ी मार्मिक शैली मे अभिव्यंजना मिली है। इस संकलन मे उनके 'मींझर' नामक काव्य-संग्रह से कुछ कविताएं सकलित की हैं।

काव्य-शास्त्र विवेचना

दोष

मम्मट ने काव्य की परिभाषा देते हुए लिखा है "काव्य वह शब्दार्थ-युगल है जो दोष-रहित हो, गुण-सहित हो और कहीं-कहीं यदि अलकार-विहीन भी हो तो कोई हानि नहीं है।" इस तरह काव्य मे दोष-हीनता और गुण-युक्तता का बहुत बड़ा महत्व है। काव्य के दोष क्या और कैसे होते हैं, इसका सस्कृत के आचार्यों ने विस्तृत विवेचन किया है और उनके लक्षण बताए हैं। कुछ लक्षण इस प्रकार हैं—

१. जो काव्य के मुख्यार्थ का घातक हो, वह दोष है" 'मम्मट'

२. गुणों के विरोध मे आने वाले तत्व दोष हैं। 'वामन'

३. जो काव्यास्वादन मे उद्वेग उत्पन्न करता है, उसे दोष कहते हैं। 'अग्नि पुराण'

४. रस का अपकर्ष करने वाले तत्व दोष कहलाते हैं।

सस्कृत काव्य-शास्त्र मे इस प्रकार के दोषो की भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न विवेचना की है, किन्तु उन सबका सार देते हुए आचार्य मम्मट ने तीन प्रकार के काव्य-दोष बताये हैं—

(१) शब्द-दोष (२) अर्थ-दोष (३) रस-दोष।

इन तीन वर्गों के और भी अवान्तर भेद किये गये हैं जिनकी सख्या बहुत अधिक है, किन्तु प्रस्तुत पाठ्यक्रम मे निम्नलिखित काव्य-दोषो को ही स्थान दिया गया है—(१) श्रुतिकटुत्व (२) ग्राम्यत्व (३) अक्रमत्व (४) दुष्क्रमत्व (५) च्युत-सस्कृति (६) क्लिष्टत्व (७) अप्रतीतत्व

१. श्रुति-कटुत्व : यह शब्दगत दोष है जिसे वामन ने श्रुति-विरस या वर्णकटु नाम दिया है। जहाँ कानों को खटकने वाले शब्द का प्रयोग

किया जाता है वहाँ यह दोष होता है। ध्यान रखने की बात है कि यह श्रृङ्गारादि कोमल रसो मे ही माना जाता है, वीर, रौद्र आदि मे नहीं।

उदाहरण—

देखत कछु कौतुक इतै, देखो नेकु विचारि।
कब की इकटक डटि रही, टटिया अँगुरिन टारि॥

श्रृङ्गार रस के इस दोहे मे दूसरी पक्ति में ट वर्ग के कई वर्ण आये हैं जो कानों को अच्छे नहीं लगते।

२. ग्राम्यत्व : यह दोष वहाँ पर होता है जहाँ पर चतुर व्यक्तियों की भाषा का प्रयोग न करके गँवारू भाषा का प्रयोग किया जाता है—

यथा— "जैयो षट्पद धाय कै, करि निज कृपा विशेष।
लैयो काज बनाय कै, दे मो यह सदेश" ॥
सिदोसी लौटियो।

यहाँ प्रयुक्त 'सिदोसी' (शीघ्र) शब्द ब्रज-लोकभाषा का है।

३. अक्रमत्व : यह शब्दगत दोष है। आचार्यों ने इसे 'क्रमहीन' तथा 'कर्महीन' नाम भी दिया है। अक्रमता वह दोष है जहाँ वाक्य मे जिस पद के पश्चात् जिस पद का आना उचित हो, वह वहाँ न आकर दूसरे स्थान पर आवे, यथा—

सीताजू रघुनाथको अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सबनकी, हृदयावली भूपाल॥

यहाँ 'सबन' शब्द को 'भूपाल' के साथ आना चाहिये था।

४. दुष्क्रमत्व : यह अर्थगत दोष है। यह दोष वहाँ होता है जहाँ क्रम के विचार से क्रम न रखा जाये अथवा लोक या शास्त्र के विरुद्ध क्रम हो, यथा—

"मारुतनन्दन मारुत को मन को खगराज को वेग लजायो"

सब मे तीव्रगामी 'मन' के कथन के पश्चात् 'खगराज' के वेग का दुष्क्रमत्व दोष है।

या

'जुड़ी, विषम जुर जायेगी, भाय सुदरसन देहु'

पहले उदाहरण में 'वाचक' शब्द काव्य-शास्त्र का शब्द-शक्तियों से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्द है जिसे सामान्य-व्यवहार में प्रयोग करना अप्रतीतत्व दोष है। दूसरे में 'सुदर्शन' वैद्यक शास्त्र का शब्द है जो लोक-व्यवहार में अप्रसिद्ध है। *अत यहाँ भी अप्रतीतत्व दोष है।*

'गुण'

काव्य-शास्त्र में रस के उत्कर्ष-हेतु-रूप स्थायी धर्मों को गुण कहा गया है। इस शब्द का अर्थ है विशेषता, शोभाकारी, आकर्षक धर्म या दोषाभाव। वामन ने गुणों को काव्य की शोभा करने वाले धर्म कहा है। मम्मट ने काव्य की परिभाषा मे 'गुण-सहित' होना भी काव्य का लक्षण माना है और उन्हे रस के उत्कर्ष के कारण-रूप धर्म माना है। गुण शब्द और अर्थ के धर्म हैं और काव्य के लिए अनिवार्य माने गये हैं।

संस्कृत के आचार्यों ने गुणों की सख्या का विस्तृत विवेचन किया है। किसी ने १०, किसी ने २० और किसी ने २४ तक इनकी सख्या गिनाई है, *किन्तु हिन्दी में मम्मट और विश्वनाथ के अनुकरण पर तीन गुणो को ही* प्रतिष्ठा मिली है, वे हैं (१) ओज (२) माधुर्य (३) प्रसाद।

१. ओज : ओज शब्द का अर्थ है तेज, प्रताप, दीप्ति।

किसी रचना के अन्तर्गत जो गुण सुनने वाले के मन मे उत्साह, वीरता, आवेश आदि जाग्रत करे, वह ओज गुण कहलाता है, यथा—

'लपट-झपट भहराने, हहराने वात,
भहराने भट पर्‌यो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
"नाथ न चलेगो बल अनल भयावनो"॥

इस गुण के द्वारा वीर, रौद्र, बीभत्स और भयानक रस उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं तथा इसके निम्नलिखित लक्षण होते हैं—

(क) ट वर्ग के वर्णों की बहुलता ।
(ख) संयुक्त शब्दों का प्रयोग ।
(ग) 'र' के संयोग से बने संयुक्ताक्षरों का प्रयोग ।
(घ) लम्बे-लम्बे समास और पदांश ।

२. माधुर्य : इसका शब्दार्थ है—मधुर होने की विशेषता, मिठास, रोचकता । साहित्य-कोश में इसका अर्थ दिया है, श्रुति सुखदाता, समास रहितता, उक्ति-वैचित्र्य, आर्द्रता, चित्त को द्रवित करने की विशेषता, भाव-मयता, आह्लादता । किसी काव्य-कृति को पढ़कर या सुनकर चित्त मधुरता और आनन्द से द्रवित हो जाये वहाँ माधुर्य गुण होता है, उदाहरण—

"मुनि कै धुनि चातक मोरन की, चहु ओरन कोकिल कूकन सो,
अनुराग भरे हरिबागन में, सखि रागत राग अचूकनसो" ।

इसमें निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना चाहिये—

(क) ट वर्गीय वर्णों के प्रयोग से बचा जाये ।
(ख) संयुक्ताक्षरों के प्रयोग से बचा जाये ।
(ग) लम्बे-लम्बे समास और वाक्यांश न हों ।

यह गुण शृंगार, करुण और शान्त रस के उत्कर्ष का पोषक होता है ।

३. प्रसाद : इसका शाब्दिक अर्थ है प्रसन्नता, खिल जाना या विकसित होना । जिस काव्य में स्वच्छता, सरलता और सहजग्राह्यता हो तथा सुनते ही जिसका अर्थ सहज ही समझ में आ जाये, उसमें 'प्रसाद' गुण होता है । यह गुण सभी रसों में हो सकता है ।

उदाहरण—

मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहिचाना ?

मैंने मुख्य उसी को माना,
जो वे मनमें लाते ।
सारि, वे मुझसे बढ़कर जाते ॥

रीतियाँ

'रीति' शब्द का अर्थ है प्रणाली, पद्धति, मार्ग, पथ, शैली आदि। रीति सिद्धान्त के प्रवर्तक आचार्य वामन ने रीति को 'विशिष्ट पद-रचना' माना है। यह विशिष्टता गुणों पर आधारित होती है। वामनाचार्य ने तो रीति को ही काव्य की आत्मा माना है, किन्तु अब यह शब्द शैली या मार्ग के विशिष्ट अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। काव्य में रस के उत्कर्ष के लिये गुणानुकूल पद-रचना ही रीति कहलाती है। रीति को वृत्ति भी कहते हैं।

आचार्यों ने रीति के अनेक भेद किये हैं, किन्तु सर्वमान्य भेद तीन ही हैं—

(१) गौड़ी, (२) पांचाली और (३) वैदर्भी ।

२. गौड़ी : (परुषावृत्ति) यह ओजपूर्ण शैली है जिसमें ओज अर्थात् तेज को प्रकाश में लाने वाले वर्णों से युक्त, बहुत-से समास और आडम्बरयुक्त बोझिल रचना होती है—

यथा—

राघव-लाघव-रावण-वारण-गत-युग्म-प्रहर,
उद्धत-लङ्कापति-मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तर,
अनिमेष राम, विश्वजिद्-दिव्य-शर-भङ्ग-भाव—
विद्धाङ्ग बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर-स्राव,

इसके द्वारा ओज गुण की भाँति वीर, रौद्र और वीभत्स रस का उत्कर्ष होता है। वर्ण-रचना समासयुक्त और कठोर होती है।

२. पांचाली : यह माधुर्य और सुकुमारता से सम्पन्न रीति है। लघु-और अल्प अनुप्रास इसकी विशेषता मानी गयी है। यह मध्यम रीति 'प्रसाद' गुण की भाँति सभी रसों के लिये उपयुक्त है।

उदाहरण—

सीस-मुकुट कटि-काछनी कर-मुरली उर-माल ।
इहि बानिक मो मन बसौ सदा बिहारीलाल ॥

३. वैदर्भी : (मधुरावृत्ति) यह रीति काव्य की सर्वोत्तम रीति मानी गई है। वामन इसे समग्र गुणों से युक्त मानते हैं। साथ ही इसे दोषों के लेश के समान मधुर और विलक्षण कान्ति के गुण भी मानते हैं। इस प्रकार माधुर्य गुण की व्यंजना करने वाले व्यंजनों द्वारा समास रहित रचना वैदर्भी रीति का लक्षण है। माधुर्य गुण की भाँति इसकी परिणति भी शृङ्गार, करुण और शान्त रस के लिए ही उपयुक्त है यथा—

अधरों में राग अमन्द पिए,
अलकों में मलयज बन्द किए,
तू अब तक सोयी है आली,
आँखों में भरे विहाग री ।

अथवा

देव कछू अपनो बस ना रस लालच लाल चितै भई चेरी ।
बेगिही बूड़ि गई पँखियाँ अँखियाँ मधु की मँखियाँ भई मेरी ॥

शब्द-शक्तियाँ

शब्द का महत्त्व अर्थ के प्रकाशन में है। इसलिए शब्द और अर्थ जल और लहर की भाँति परस्पर अभिन्न माने गये हैं। शब्द के जिस व्यापार द्वारा अर्थ प्राप्त होता है, उसे शब्द की वृत्ति या शक्ति कहते हैं। अर्थ के तीन भेद माने गये हैं—वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य। इन अर्थों का बोध कराने वाली शक्तियाँ भी तीन प्रकार की मानी गई हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।

१. अभिधा : साक्षात् संकेतित अर्थ अर्थात् मुख्य अर्थ का बोध कराने वाले व्यापार को अभिधा शक्ति कहते हैं। इस शक्ति से तीन प्रकार के शब्दों का बोध होता है—(क) रूढ़ शब्द, (ख) यौगिक (ग) योगरूढ़।

(क) रूढ़ शब्द—जिन शब्दों की सामान्यतः व्युत्पत्ति नहीं होती और जो समुदाय-शक्ति से अर्थ बोध करायें वे रूढ़ शब्द कहलाते हैं जैसे घड़ा, गऊ, कुम्हार, वस्त्र आदि ।

(ख) यौगिक—जिन शब्दों का अर्थ-बोध अवयवों (प्रकृति और प्रत्ययों) की शक्ति द्वारा होता है, वे यौगिक शब्द कहलाते हैं, जैसे सुधाकर, दिनकर, हिमांशु ।

(ग) योग-रूढ़—जिनका अर्थ-बोध समुदाय तथा अवयवों की शक्ति द्वारा होता, वे योगरूढ़ कहलाते हैं। इन शब्दों में अवयवों से तो कई वस्तुओं का बोध हो सकता है किन्तु प्रयोग में वे किसी एक ही अर्थ के लिए रूढ़ हो जाते हैं। इसलिये ये शब्द यौगिक होते हुए भी रूढ़ होते हैं—जैसे जलज, वारिज, गिरधारी आदि ।

जलज = जल में उत्पन्न होने वाला, किन्तु इसका रूढ़ प्रयोग केवल कमल के अर्थ में ही होता है ।

गिरधारी = यौगिक अर्थ है, पहाड़ का धारण करने वाला, किन्तु इसका रूढ़ प्रयोग श्री कृष्ण के लिए ही होता है ।

(२) लक्षणा : शब्द के जिस व्यापार या शक्ति से मुख्य अर्थ के बाधित होने पर रूढ़ि या प्रयोजन के कारण मुख्य अर्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित हो—उसे लक्षणा शक्ति कहते हैं ।

इस लक्षणा व्यापार की तीन स्थितियाँ मानी गई हैं--

(१) मुख्यार्थ का बाधित होना, (२) मुख्यार्थ से सम्बन्धित दूसरा अर्थ, (३) इस अर्थ का रूढ़ि या प्रयोजन के आधार पर लगाया जाना । प्रयोग के रूढ़ और प्रयोजन के आधार पर लक्षणा के दो भेद किये गये हैं--

(१) रूढ़ि या निरूढ़ा लक्षणा और (२) प्रयोजनवती । पुन. मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ के सम्बन्ध के आधार पर इनके प्रत्येक के दो-दो भेद किये गये

हैं—(१) गौणी और (२) शुद्धा फिर मुख्यार्थ के बनाये रखने तथा छोड़ने के आधार पर भी इनके (१) उपादान और (२) लक्षण-लक्षणा दो भेद किये गये हैं—उपमान एवं उपमेय के आधार पर लक्षणा के (१) सारोपा और (२) साध्यवसाना दो भेद और होते हैं। इनके अनन्तर भी बहुत से भेद-प्रभेद किए गए हैं, किन्तु यहाँ संक्षेप में इन्हीं का विवेचन किया जा रहा है।

१. रूढ़ि लक्षणा : जहाँ मुख्यार्थ के बाधित होने पर रूढ़ि के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाए, वहाँ रूढ़ि लक्षणा होती है, यथा—

डिगत पानि डिगुलात गिरि, लखि सब ब्रज बेहाल।
कंप किसोरी दरस ते, खरे लजाने लाल ।।

यहाँ 'ब्रज' स्थान का नाम है जो जड़ होता है, वह बेहाल नहीं हो सकता अतः मुख्यार्थ बाधित हुआ, किन्तु आधार-आधेय के रूढ़ अर्थ से 'ब्रज' के मुख्यार्थ का सम्बन्धार्थ 'ब्रजवासी' हुआ। अतः रूढ़ि लक्षणा हुई। इसी तरह 'वह रणविद्या में कुशल है' 'भारत जाग उठा' 'नत मस्तक आज कलिंग हुआ' 'राजस्थान वीर है' 'वह चित्रकला में प्रवीण है' में रूढ़ि के द्वारा लक्ष्यार्थ ग्राह्य होता है।

१. प्रयोजनवती लक्षणा : जहाँ मुख्यार्थ के बाधित होने पर किसी विशेष प्रयोजन के कारण मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जावे, वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है।

"गाँधीजी डेढ़ पसली के आदमी थे" में मुख्यार्थ बाधित है क्योंकि आदमी डेढ़ पसली का नहीं होता, गाँधीजी के भी सभी की भाँति पूरी पसलियाँ थीं, किन्तु इस कथन का प्रयोजन है गाँधीजी का दुबलापन और दुर्बलता दिखाना, अतः यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा हुई।

जैसा कि ऊपर बताया गया है मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ के सम्बन्ध के आधार पर इसके पुनः दो भेद होते हैं—(१) गौणी (२) शुद्धा।

(क) रूढ़ शब्द—जिन शब्दों की सामान्यतः व्युत्पत्ति नहीं होती और जो समुदाय-शक्ति से अर्थ बोध कराते वे रूढ़ शब्द कहलाते हैं जैसे घड़ा, गऊ, कुत्ता, वस्त्र आदि।

(ख) यौगिक—जिन शब्दों का अर्थ-बोध अवयवों (प्रकृति और प्रत्ययों) की शक्ति द्वारा होता है, वे यौगिक शब्द कहलाते हैं, जैसे सुधाकर, दिनकर, हिमांशु।

(ग) योग-रूढ़—जिनका अर्थ-बोध समुदाय तथा अवयवों की शक्ति द्वारा होता, वे योगरूढ़ कहलाते हैं। इन शब्दों में अवयवों से तो कई वस्तुओं का बोध हो सकता है किन्तु प्रयोग में वे किसी एक ही अर्थ के लिए रूढ़ हो जाते हैं। इसलिये ये शब्द यौगिक होते हुए भी रूढ़ होते हैं—जैसे जलज, वारिज, गिरधारी आदि।

जलज = जल में उत्पन्न होने वाला, किन्तु इसका रूढ़ प्रयोग केवल कमल के अर्थ में ही होता है।

गिरधारी = यौगिक अर्थ है, पहाड़ का धारण करने वाला, किन्तु इसका रूढ़ प्रयोग श्री कृष्ण के लिए ही होता है।

(२) लक्षणा : शब्द के जिस व्यापार या शक्ति से मुख्य अर्थ के बाधित होने पर रूढ़ि या प्रयोजन के कारण मुख्य अर्थ से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित हो—उसे लक्षणा शक्ति कहते हैं।

इस लक्षणा व्यापार की तीन स्थितियाँ मानी गई हैं--

(१) मुख्यार्थ का बाधित होना, (२) मुख्यार्थ से सम्बन्धित दूसरा अर्थ, (३) इस अर्थ का रूढ़ि या प्रयोजन के आधार पर लगाया जाना। प्रयो के रूढ़ और प्रयोजन के आधार पर लक्षणा के दो भेद किये गये हैं--

(१) रूढ़ि या निरूढ़ा लक्षणा और (२) और लक्ष्यार्थ के सम्बन्ध के आधार

है—(१) गौणी और (२) शुद्धा फिर मुख्यार्थ के बनाये रखने तथा छोड़ने के आधार पर भी इनके (१) उपादान और (२) लक्षण-लक्षणा दो भेद किये गये हैं—उपमान एवं उपमेय के आधार पर लक्षणा के (१) सारोपा और (२) साध्यवसाना दो भेद और होते हैं। इनके अनन्तर भी बहुत से भेद-प्रभेद किए गए हैं, किन्तु यहां संक्षेप में इन्हीं का विवेचन किया जा रहा है।

१. रूढ़ि लक्षणा : जहाँ मुख्यार्थ के बाधित होने पर रूढ़ि के द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाए, वहाँ रूढ़ि लक्षणा होती है, यथा—

डिगत पानि डिगुलात महि, लखि सब ब्रज बेहाल।
कप किसोरी दरस तें, खरे लजाने बाल॥

यहाँ 'ब्रज' स्थान का नाम है जो जड़ होता है, वह बेहाल नहीं हो सकता अतः मुख्यार्थ बाधित हुआ, किन्तु आधार-आधेय के रूढ़ अर्थ से 'ब्रज' के मुख्यार्थ का सम्बन्धार्थ 'ब्रजवासी' हुआ। अतः रूढ़ि लक्षणा हुई। इसी तरह 'वह रणविद्या में कुशल है' 'भारत जाग उठा' 'नत मस्तक आज कलिंग हुआ' 'राजस्थान वीर है' 'वह चित्रकला में प्रवीण है' में रूढ़ि के द्वारा लक्ष्यार्थ ग्राह्य होता है।

२ प्रयोजनवती लक्षणा : जहाँ मुख्यार्थ के बाधित होने पर किसी विशेष प्रयोजन के कारण मुख्यार्थ से सम्बन्ध रखने वाला लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाये, वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है।

"गांधीजी डेढ़ पसली के आदमी थे" में मुख्यार्थ बाधित है क्योंकि आदमी डेढ़ पसली का नहीं होता, गांधीजी के भी सभी की भाँति पूरी पसलियाँ थी, किन्तु इस कथन का प्रयोजन है गांधीजी का हल्कापन और क्षीणता दिखाना, अतः यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा हुई।

जैसा कि ऊपर बताया गया है मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ के सम्बन्ध के आधार पर इनके पुनः दो भेद होते हैं—(१) गौणी (२) शुद्धा।

१. गौणी : जहाँ मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ मे सादृश्य सम्बन्ध होता है हाँ गौणी लक्षणा होती है जैसे 'वह गधा है' इसमे मूर्खता का सादृश्य होने के कारण गौणी लक्षणा होगी। सादृश्यमूलक अलकारो मे गौणी लक्षणा ही होती है।

२. शुद्धा : जहाँ मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ मे सादृश्य के अतिरिक्त कारण-कार्य, आधार-आधेय, धार्य-धारक, अङ्ग-अङ्गी आदि का सम्बन्ध हो, वहाँ शुद्धा लक्षणा होती है, जैसे 'घी आयु है' मे कारण-कार्य का सम्बन्ध होने से यहाँ शुद्धा लक्षणा है।

इसी प्रकार मुख्यार्थ के बनाये रखने या छोडने के आधार पर इनके (१) उपादान लक्षणा और (२) लक्षण-लक्षणा दो भेद और माने गये हैं—

१. उपादान लक्षणा : जहाँ मुख्यार्थ बना रह कर अपनी सिद्धि के लिए उससे सम्बन्धित अन्य उपादानों को भी समेट ले वहाँ उपादान लक्षणा होती है, जैसे—'लाठियाँ आ रही हैं' में लाठियों के साथ उनके धारको को भी सम्मिलित कर लिया गया है। इसी प्रकार 'द्वार की निगाह रखना' मे द्वार के साथ घर और घर की वस्तुओ का अर्थ भी सम्मिलित है। अत यहाँ उपादान लक्षणा होगी।

२. लक्षण-लक्षणा : जहाँ मुख्यार्थ अपने आपको लक्ष्यार्थ की सिद्धि के लिए समर्पित कर देता है वहाँ लक्षण-लक्षणा होती है। जैसे—तुलसी गाय जाय के देत काठ मे पाँउ'-यहाँ 'काठ में पैर देना' मुख्यार्थ है, जो 'विवाह पी बन्धन' मे पडने के लक्ष्यार्थ को समर्पित हो गया है। अत लक्षण-लक्षणा है। कभी-कभी तो इसमे अर्थ उलटा भी हो जाता है मूर्ख को 'वृहस्पति कहना' वेश्या को 'महासती' कहना इसी प्रकार के उदाहरण हैं।

उपमेय पर उपमान के आरोपण के आधार पर (१) सारोपा और (२) साध्यवसाना दो भेद और माने गये हैं—

१. सारोपा : जहाँ उपमेय उपमान दोनो रहते हैं वहाँ सारोपा लक्षणा जैसे—'वह गीदड है'। रूपक अलकार मे सारोपा लक्षणा होती है

(ग) लक्षणा मूला शाब्दी व्यंजना—जिस प्रयोजन के लिए ... शब्द का प्रयोग किया जाये, उसकी प्रतीति कराने वाली शब्द-शक्ति लक्षणा-मूला शाब्दी व्यंजना होती है।

तन्त्रीनाद, कवित्तरस, सरस राग रतिरंग ।
अन बूडे बूडे तिरे, जे बूडे सब अंग ॥

यहाँ 'बूडे' शब्द अनेकार्थी है जिसका लाक्षणिकता के आधार पर सम्बन्धार्थ 'रगसिक्त' होता है। इस लक्षणा से आगे बढ़कर जो अर्थ व्यंजित होता है वह यह है कि 'तन्त्रीनाद, कवित्तरस, सरस राग और रतिरंग में डूबे रहना ही जीवन का आनन्द है। अतः यहाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना हुई।

२ आर्थी व्यंजना : जहाँ व्यंजना शक्ति से व्यक्त हुआ व्यंग्यार्थ शब्द पर आधारित न होकर अर्थ द्वारा ध्वनित हो, वहाँ आर्थी व्यंजना होती है। इसमें शब्द के पर्यायवाची अन्य शब्द रख देने पर भी अर्थ का व्यंग्यार्थ बना रहता है।

उदाहरण-- 'बाल मराल कि मन्दर लेहिं' में काकु वैशिष्ट्य से अर्थ है कि रामचन्द्रजी धनुष को नहीं उठा सकते।

'घाम घरीक निवारिये, कलित ललित अलि-पुंज ।
जमुना-तीर तमालतरु, मिलत मालती-कुंज'' ॥

इसमें अभिधार्थ तो यमुना के तीर पर करील-कुंज में क्षण भर विश्राम करने से सम्बन्धित है, किन्तु स्थान-वैशिष्ट्य के कारण इसके द्वारा प्रणय-निवेदन भी व्यंजित होता है। यह व्यंग्यार्थ शब्द पर आधारित न होकर अर्थ पर आधारित है, अत यहाँ आर्थी व्यंजना हुई।

आर्थी व्यंजना केवल अर्थ की विशिष्टता के कारण सम्भव होती है, और यह अर्थ-वैशिष्ट्य कई प्रकार के बताये गये हैं, यथा वक्तृ, बोधक, काकु, वाक्य, वाच्य, अन्यसन्निधि, प्रस्ताव, देश, काल तथा चेष्टा। इनका पृथक्-पृथक् वर्णन अपेक्षित नहीं है।

महाकवि सूरदास

[नीचे दिये हुये पद 'सूरसागर' में से संकलित हैं। इनमें विनय, बाल-क्रीड़ा, कृष्ण की रूपमाधुरी, वात्सल्य, संयोग-श्रृंगार और विप्रलंभ-श्रृंगार सम्बन्धी सूर की काव्य-प्रतिभा का प्रतिनिधित्व करने वाले पदों का संकलन किया गया है। इन पदों से सूर की भावुकता, तन्मयता, सूक्ष्म-पर्यवेक्षण शक्ति, मानव-वृत्तियों की गहराई में पैठने की क्षमता और कलात्मकता का सुन्दर परिचय मिलता है। बाल-वर्णन और विप्रलंभ-श्रृंगार के वर्णन में इनकी जितनी पैठ हिन्दी के अन्य कवियों में नहीं मिलती, इन पदों के अध्ययन से यह बात और भी स्पष्ट हो जायगी।]

विनय के पद

[१]

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज।
महा पतित कबहूँ नहिं आयो, नैकु तिहारे काज॥
माया सबल, धाम-धन-बनिता, बाँध्यौ हौं इहि साज।
देखत-सुनत सबै जानत हौ, तऊ न आयौ बाज॥
कहियत पतित बहुत तुम तारे, स्रवननि सुनी अवाज।
दई न जात खेवट उतराई, चाहत चढ़्यौ जहाज॥
लीजै पार उतारि सूर कौ, महाराज ब्रजराज।
नई न करन कहत प्रभु, तुम हौ सदा गरीब-निवाज॥

[२]

जा पै दीनानाथ ढरैं।
सोइ, कुलीन, बड़ौ सोइ, सुन्दर जिहि पर कृपा करैं॥

(२)

कौन कुलीन [illegible], हरि हैं जन पर ढरै
राजा कौन बड़ो रावन तें, गर्बहि गर्ब गरै ॥
रंक कौन सुदामा हू तें आप समान करै ।
अधम कौन है अजामिल तें जमराज जात डरै ॥
कौन विरक्त अधिक नारद तें निसिदिन भ्रमत फिरै ।
जोगी कौन बड़ो शंकर तें ताको काम छरै ॥
अधिक कुरूप कौन कुबजा तें हरि पति पाई तरै ।
अधिक सुरूप कौन सीता तें जनम वियोग भरै ॥
यह गति मति जानै नहिं कोऊ किहि रस रसिक ढरै ।
सूरदास भगवन्त भजन बिनु फिरि-फिरि जठर जरै ॥

[३]

प्रभु हौं एक-एक करि टरिहौं ।
कै तुमहीं कै हमहीं माधौ, अपुन भरोसैं लरिहौं ॥
हौं तो पतित सात पीढ़िन को, पतितैं ह्वै निस्तरिहौं ।
अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं,तुम्हहिं बिरद बिनु करिहौं ॥
कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायौ हरि हीरा ।
सूर पतित तबहीं उठि है प्रभु, जब हँसि दैहौ बीरा ॥

वात्सल्य-वर्णन (संयोग)

[४]

जसुमति मन अभिलाष करै ।
कब मेरो लाल घुटुरुवनि रेंगै कब धरनी पग द्वैक धरै ॥
कब द्वै दाँत दूध के देखौं कब तुतरे मुख बैन झरै ।
कब नन्दहिं कहि बाबा बोलै कब जननी कहि मोहिं ररै ॥
मेरो अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसों झगरै ।
यौं तनिक-तनिक कछु खैहै अपने कर सो मुखहि भरै ॥

सब हँसि ग्वाल कहैगो मोसों छबि देखत दुख दूरि है ।
स्याम अकेले आँगन छाँड़े आप गई कुछ काज घरे ॥
एहि अन्तर अधवाइ उठी इक गरजत गगन सहित थहरै ।
सूरदास ब्रज-लोग सुनत धुनी जो जहँ-तहँ सब अतिहि डरै ॥

[५]

कान्ह चलत पग द्वै-द्वै धरनी ।
जो मन में अभिलाष करत ही, सो देखति नद घरनी ॥
रुनुक-झुनुक नूपुर बाजत पग, धुनि अति ही मन हरनी ।
बैठ जात पुनि उठत तुरत ही, सो छवि जाय न बरनी ॥
ब्रज-जुवती सब देखि थकित भई, सुन्दरता की ग्ररनी ।
चिरजीवो जसुदा को नन्दन, सूरदास को तरनी ॥

[६]

हरि अपने आँगन कछु गावत ।
तनक-तनक चरनन सों नाचत मनही मनहिं रिझावत ॥
बाँह उचाइ काजरी-धौरी गैयन टेरी बुलावत ।
कबहुँक बाबा नन्द बुलावत कबहुँक घर में आवत ॥
माखन तनक आपने कर लै तनक बदन मैं नावत ।
कबहुँ चितै प्रतिबिम्ब खंभ मैं लवनी लिये खवावत ॥
दुरि देखत जसुमति यह लीला हरष-अनद बढ़ावत ।
'सूर' स्याम के बाल-चरित ये नित देखत मन-भावत ॥

[७]

खेलत कान्ह-नन्द इक ठौरे ।
कछुक खात लपटात दोउ कर बालकेलि अति भोरे ॥

बरा कौर मेलत मुख भीतर मिरिच दसन टुकटौरे ।
तीछन लगी नयन भरि श्राये रोवत बाहर दौरे ॥
फूंकति वदन रोहिनी ठाडी लिये लगाय अँकोरे ।
सूर स्याम को मधुर कौर दै कीन्हे तात निहोरे ॥

बाल-क्रीड़ा

[८]

खेलन श्रब मेरी जाइ बलैया ।
जबहि मोहि देखत लरिकन संग तबहि खिझत बल भैया ॥
मोसो कहत तात बसुदेव को देवकि तेरी मैया ।
मोल लियौ कुछ दै करि तिनकौ, करि-करि जतन बढैया ॥
श्रब बाबा कहि कहत नन्द को जसुमति सौं कहै मैया ।
ऐसे कहि सब मोहि खिझावत तब उठि चल्यौ खिसैया ॥
पाछै नन्द सुनत है ठाडे हँसत-हँसत उर लैया ।
सूर नन्द बलरामहिं घिरयौ तब मन हरख कन्हैया ॥

[९]

कान्ह कहत जननी समुझाई ।
बहँ तहँ डारे रहत खिलौना, राधा जनि ले जाइ चुराई ॥
साँझ सवारे श्रावन लागी, चितै रहति मुरली तन लाई ।
इनहीं में मेरो प्रान बसतु है, तेरे भाएँ नेकु न माई ॥
राखि छिपाई कह्यो करि मैरो, बलिदाऊ को जनि पतिश्राई ।
सूरदास यह कहति जसोदा, को लैहै मोहि लगै बलाई ॥

[१०]

मैया ! मैं नहीं माखन खायो ।
ख्याल परे यह सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो ॥

देखि तुही सींके पर भाजन ऊँचे धरि लटकायो ।
हौं जु कहत नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो ।।
मुख दधि पोंछि बुद्धि इक कीन्ही दोना पीठि दुरायो ।
डारि साँट मुसुकाई जसोदा स्याम ही कंठ लगायो ।।
बाल-विनोद मोद मन मोह्यो भगति-प्रताप दिखायो ।
सूरदास प्रभु जसुमति के सुख सिव बिरंचो बौरायो ।।

[११]

खेलन मैं को काको गुसैंयाँ ?
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैंयाँ ।।
जाति पाँति हमतैं बड़ नाही, नाहिन बसत तुम्हारी छैयाँ ।
अति अधिकार जनावत यातैं, जातैं अधिक तुम्हारे गैंयाँ ।।
रूठि करै तासो को खेलै ? रहे बैठि जहँ-तहँ सब ग्वैयाँ ।
सूरदास प्रभु खेल्योइ चाहत, दाउ दियो करि नन्द दुहैयाँ ।।

संयोग-श्रृंगार

[१२]

बूझत स्याम, कौन तू गोरी ?
कहाँ रहति काकी तू बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी ।।
काहे कों हम ब्रज-तन आवति, खेलति रहति आपनी पोरी ।
सुनति रहति स्रवननि नन्द-ढोटा, करत रहत दधि-माखन चोरी ।।
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलहु संग मिलि जोरी ।
'सूरदास' प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी ।।

[१३]

बिधातहिं चूक परी मैं जानी ।
आजु गोबिंदहिं देखि देखि हौं, इहै समुझि पछितानि ।।

रचि पचि सोचि सँवारि सकल अँग, चतुर चतुरई ठानी ।
दीठि न दई रोम रोमनि प्रति, इतनिहिं कला नसानी ।।
कहा करो अति सुख दुई नैना, उमगि चलत भरि पानी ।
'सूर' सुमेर समाइ कहाँ धौं, बुद्धि बामनी पुरानी ।।

[१४]

देखि री हरि के चचल नैन ।
खजनमीन-मृगन चपलाई नहिं पटतर इक सैन ।।
राजिव-दल इन्दीवर सतदल, कमल कुसेसय जाति ।
निसि मुद्रित प्रातहिं वै विकसित ये विकसित, दिनराति ।।
अरुन, स्वेत, सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाई ।
मनु सरसुति, गंगा जमुना मिली, आगम कीन्हो आइ ।।
अवलोकनि जलधार तेज अति, तहाँ न मन ठहराइ ।
सूर स्याम लोचन अपार छवि उपमा सुनि सरमाइ ।।

[१५]

आजु हरि अद्भुत रास रचायो ।
एक ही सुर सब मोहित कीन्हे, मुरली नाद सुनायो ।।
अचल चले, चल थकित भये सब, मुनि-जन ध्यान भुलायो ।
चचल पवन थक्यो, नहिं डोलत, जमुना उलटि बहायो ।।
थकित भयो चन्द्रमा सहित मृग, सुधा-समुद्र बढ़ायो ।
सूर स्याम गोपिन सुखदायक, लायक दरस दिखायो ।

वात्सल्य-वियोग

[१६]

जसोदा कान्ह-कान्ह कै बूझै ।
फूटि न गयी तिहारी चारो, मारग कैसे सूझै ?

इक तौ जरी जात बिनु देखे, अब तुम दीन्ही फूँकि ।
यह छतियाँ मेरे कुँवर कान्ह बिनु फटि न भयी द्वै टूकि ।।
धिग तुम धिग ये चरन अहो पति, अध-बोलत उठि धाये ।
सूर, स्याम बिछुरन की हम पै, देन बधाई आये ।।

[१७]

कहियौ जसुमति की आसीस ।
जहाँ रहौ तहँ नन्द-लाडिलौ, जीवौ कोटि बरीस ।।
मुरली दई दोहनी घृत भरि, ऊधौ धरि लई सीस ।
इह घृत तौ उनही सुरभिन कौ, जो प्यारी जगदीस ।।
ऊधौ चलत सखा मिलि आये, ग्वाल-बाल दस-बीस ।
अब के ह्याँ ब्रज फेरि बसावौ, सूरदास के ईस ।।

[१८]

मेरे कुँवर कान्ह बिन सब कछु वैसोइ धर्यो रहै ।
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेति गहै ।।
सूने भवन जसोदा सुत के, गुनि-गुनि सूल सहै ।
दिन उठि घर घेरत ही ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै ।।
जो ब्रज में आनन्द हुतो, मुनि मनसा हू न गहै ।
सूरदास, स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हू न लहै ।।

विप्रलम्भ-शृंगार

[१९]

निसि दिन बरसत नैन हमारे ।
सदा रहति पावस ऋतु हम पै जब ते स्याम सिधारे ।।

दृग अंजन न रहत निसिवासर, कर कपोल भए कारे ।
कंचुकी-पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे ।।
आँसूं सलिल सबै भइ काया, पल न जात रिस टारे ।
सूरदास प्रभु यहै परेखौ, गोकुल काहे बिसारे ।।

[२०]

उपमा नैननि एक रही ।
कविजन कहत-कहत सब आए, सुधि करि नाहिं कही ।।
कहे चकोर, मुख-बिधु बिनु जीवत, भ्रमर नहीं उड़ि जात ।
हरि-मुख कमल-कोस बिछुरे तैं, ठाले कत ठहरात ।।
ऊधो बधिक व्याध ह्वै आये, ज्यों मृगसम क्यों न पलात ।
भागि जाहिं बन सघन स्याम में जहाँ न कोऊ घात ।।
खजन मनरजन न होहिं ये, कबहूँ नाहिं अकुलात ।
पख पसारि न होत चपल गति, हरि समीप मुकुलात ।।
प्रेमि न होहिं, कवन बिधि कहिए, झूठे ही तन आडत ।
सूरदास, मीनता कछू इक, जल भर सग न छाँडत ।।

[२१]

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।
प्रीति पतग करि दीपक सों, आपै प्रान दह्यो ।।
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सो, सपुट माँझ गह्यो ।
सारँग प्रीति करी जू नाद सों, सनमुख बान सह्यो ।।
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यो ।
सूरदास, प्रभु बिन दुख दूजो, नैननि नीर बह्यो ।।

[२२]

हमारे हरि हारिल की लकरी ।
मन क्रम बचन नदनदन उर, यह दृढ करि पकरी ।।

जागत, सोवत, सपने, सौतुख कान्ह-कान्ह जकरी ।
सुनतहि जोग लगत ऐसो अलि ! ज्यों करुई ककरी ।
सोई व्याधि हमैं लै आए देखी सुनी न करी ।
यह तो सूर तिन्है लै दीजै जिनके मन चकरी ।।

[२३]

मधुकर स्याम हमारे ईस ।
तिनको ध्यान धरैं निसिबासर औरहि नव न सीस ।।
जोगिनि जाइ जोग उपदेसहु, जिनके मन दस बीस ।
एकै चितै एकै वह मूरति नित चितवति दिन तीस ।।
काहे निरगुन ग्यान आपनो, जित कित डारत खीस ।
सूरदास-प्रभु नन्दनन्दन बिनु, हमरे को जगदीस ।।

उद्धव द्वारा राधा की दशा का वर्णन

[२४]

तब तें इन सबहिन सचु पायो ।
जब तें हरि संदेस तिहारो सुनत तांवरो आयो ।।
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायो ।
खोले मिरगा चौक चरन ते हुते जे बन दुरायो ।।
ऊँचे बैठि बिहंग सभा बिच कोकिल मंगल गायो ।
निकसि कन्दरा ते केहरि हू माथे पूँछ हिलायो ।।
गृहबन ते गजराज निकसि कै अँग-अँग गर्व जनायो ।
सूर बहुरिहो कह राधा कै करिहो बैरिन भायो ।।

दृग खंजन न रहत निसिबासर, कर कपोल भए कारे ।
कंचुकी-पट सूखत नहिं कबहूँ, उर बिच बहत पनारे ॥
आँसू सलिल गये भइ काया, पल न जात रिस टारे ।
सूरदास प्रभु यह परेखो, गोकुल काहैं बिसारे ॥

[२०]

उपमा नैननि एक रही ।
कविजन कहत-कहत सब आए, सुधि करि नाहिं कही ॥
कहे चकोर, मुख-बिधु बिनु जीवन, भ्रमर नहीं उड़ि जात ।
हरि-मुख कमल-कोश बिछुरे तैं, ठाले क्यों ठहरात ॥
ऊधो बधिक ब्याध ह्वै आये, ज्यों मृगसम क्यों न पलात ।
भागि जाहि बन सघन स्याम में जहाँ न कोऊ घात ॥
खंजन मनरंजन न होहिं ये, कबहूँ नाहिं अकुलात ।
पंख पसारि न होत चपल गति, हरि समीप मुकुलात ॥
प्रेमि न होहिं, कवन बिधि कहिए, झूठे ही तन आड़त ।
सूरदास, मीनता कछू इक, जल भर संग न छाँडत ॥

[२१]

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।
प्रीति पतंग करि दीपक सों, आपै प्रान दह्यो ॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों, संपुट माँझ गह्यो ।
सारँग प्रीति करी जु नाद सों, सनमुख बान सह्यो ॥
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यो ।
सूरदास, प्रभु बिन दुख दूजो, नैननि नीर बह्यो ॥

[२२]

हमारे हरि हारिल की लकरी ।
मन क्रम वचन नंदनंदन उर, यह दृढ़ करि पकरी ॥

जागत, सोवत, सपने, सौतुख कान्ह-कान्ह जकरी ।
सुनतहि जोग लगत ऐसो अलि ! ज्यों करुई ककरी ।
सोई व्याधि हमें लै आए देखी सुनी न करी ।
यह तो सूर तिन्हैं लै दीजै जिनके मन चकरी ।।

[२३]

मधुकर स्याम हमारे ईस ।
तिनको ध्यान धरैं निसिबासर औरहि नवै न सीस ।।
जोगिनि जाइ जोग उपदेसहु, जिनके मन दस बीस ।
एकै चित एकै वह मूरति नित चितवति दिन तीस ।।
काहे निरगुन ग्यान आपनो, जित कित डारत खीस ।
सूरदास-प्रभु नन्दनन्दन बिनु, हमरे को जगदीस ।।

उद्धव द्वारा राधा की दशा का वर्णन

[२४]

तब ते इन सबहिन सचु पायो ।
जब ते हरि सन्देस तिहारो सुनत तँवारो आयो ।।
फूले ब्याल दुरे ते प्रगटे पवन पेट भरि खायो ।
भूले मिरगा चौक चरन ते हुते जे बन बिसरायो ।।
ऊँचे बैठि बिहग सभा बिच कोकिल मंगल गायो ।
निकसि कन्दरा ते केहरि हू माथे पूँछ हिलायो ।।
गहबर ते गजराज निकसि कै अँग-अँग गर्व जनायो ।
सूर बहुरियो कह राधा के करि हौ बैरिन भायो ।।

महाकवि तुलसीदास

[निम्नांकित कवित्त तुलसी की 'कवितावली' में से संकलित हैं। 'कवितावली' कवित्त-सवैयों का संग्रह है और मानस की भांति सात खंडों में विभक्त है। इसका काव्यशिल्प मुक्तक काव्य का है। उक्तियों की विलक्षणता, अनुप्रासों की छटा लयपूर्ण छन्दों की स्थापना के साथ भावात्मक गहराई इसकी विशेषता है। संकलित कवित्तों में ये विशेषताएं देखी जा सकती हैं। संकलन करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि इन कविताओं के माध्यम से पाठक एक ओर जहाँ कवि के भावों के साथ तादात्म्य कर सके वहाँ दूसरी ओर उनकी मधुरता, रोचकता और काव्यात्मकता का आनन्द भी उठा सके। साथ ही विभिन्न रसों की अनुभूति कराना भी ध्येय रहा है। बाल-काण्ड में वात्सल्य और शृंगार है तो सुन्दर काण्ड और लंका काण्ड में रौद्र और वीर। शान्तरस का उत्तरकाण्ड में समावेश है।]

बाल-काण्ड

[१]

दूध-दधि रोचना, कनकथार भरि-भरि,
आरती सँवारि, वर नारि चलीं गावनी।
लीन्हे जयमाल करकज सोहैं जानकी के,
पहिराओ राघोजू को सखियाँ सिखावती।

तुलसी मुदित मन जनक नगरजन,
झाँकती झरोखे लागीं सोभा रानी पावनी।
मनहुँ चकोरी चारु बैठी निज निज नीड,
चंद की किरण पीवें, पलकें न लावनी।।

[२]

नगर निसान बर बाजै ब्योम दुंदुभी,
बिमान चढ़ि गान कैं-कैं सुर नारि नाचहीं ।
जय-जय तिहूँ पुर, जयमाल राम उर,
बरषैं सुमन सुर, रूरे रूप राचहीं ॥

जनक को पन जयौ, सबको भावतो भयो,
तुलसी मुदित रोम-रोम मोद माचहीं ।
साँवरो किसोर, गोरी सोभा पर तृन तोरि,
'जोरी जियौ जुग-जुग' सखी जन जाँचहीं ॥

[३]

निपट निदरि बोले बचन कुठार-पानि,
मानी त्रास औनिपन मानो मौनता गही ।
रोषे माखे लखन, अकनि अनखौंही बातैं,
तुलसी बिनीत बानी बिहँसि ऐसी कही ॥

'सुजस तिहारो भरो भुवननि भृगुनाथ,
प्रगट प्रताप आपु कह्यो सो सबै सही ।
टूट्यो सो न जुरैगो सरासन महेसजू को,
रावरी पिनाक मे सरीकता कहा रही ॥'

अयोध्या-काण्ड

[४]

बल्कल बसन, धनुबान पानि, तूनकटि,
रूप के निधान, घन-दामिनि-बरन हैं ।

तुलसी सुतिय संग सहज सुहाए अंग,
नवल कँवल हू ते कोमल चरन हैं॥

औरै सो बसत, औरै रति, औरै रतिपति,
मूरति बिलोके तन मान के हरन हैं।
तापस वेषै बनाइ, पथिक पथै सुहाइ,
चले लोक-लोचननि सुफल करन हैं॥

[५]

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे-बारे,
केवट की जाति कछु बेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू,
हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं॥

गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सो निषाद ह्वै कै बाद न बढ़ाइहौं।
तुलसी के ईस राम रावरे सो साँची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं॥

सुन्दर काण्ड

[६]

बसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर,
खोरि-खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी डेरात ढीलो गात कै कै,
लात के अघात सहै जी में कहै कूर हैं॥

[२]

नगर निसान वर बाजे व्योम दुंदुभी,
विमान चढ़ि गान कै-कै सुर नारि नाचहीं ।
जय-जय तिहूँ पुर, जयमाल राम उर,
बरपें सुमन सुर, रूरे रूप राचहीं ॥

जनक को पन जयो, सबको भा
तुलसी मुदित रोम-रोम मो
साँवरो किसोर, गोरी सोभा पर
'जोरी जियो जुग-जुग' सखी ज

[३]

निपट निदरि बोले वचन कुठार-पानि,
मानी त्रास औनिपन मानो मौनता गही ।
रोषे माषे लखन, अकनि अनखौंही बातें
तुलसी विनीत बानी बिहँसि ऐसी कही ·

'सुजस तिहारो भरो
प्रगट प्रताप आपु
टूट्यो सो न जुरैगो
रावरो पिनाक में

अयोध्या-प...

[९]

गाज्यो कपि गाज ज्यों, बिराज्यो ज्वालजाल-जुत,
भाजे बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो।
धावो धावो धरो, सुनि धाए जातुधान धारि,
बारिधारा उलदै जलद ज्यौं न सावनो॥

लपट झपट झहराने हहराने बात,
भहराने भट पर्यो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि,
"नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो"॥

[१०]

'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति है परानी, गति जाति गजचालि है।
बसन बिसारैं मनि-भूषन सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं क्यों हूँ कोऊ पालि है?

तुलसी मदोवै मीजि हाथ, धुनि माथ कहै,
"काहू कान कियो न मैं कह्यौ केतो कालि है"।
बापुरो बिभीषन पुकारि बार-बार कह्यो,
"बानर बड़ो बलाई घने घर घालि है॥"

[११]

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट उर,
दिन-दिन बिकल सकल सुख राँक सो।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो॥

राम की रजाय तें रसायनी समीर-सून,
उतरि पयोधि पार सोधि सरवाक सो।
जातुधान बुट, पुटपाक लंक जात-रूप,
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो ॥

लंका काण्ड

[१२]

तुलसीस-बल रघुवीरजु के बाल-सुत,
वाहि न गनत बात कहत, करेरी सी,
"बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत,
रिस काहे लागति कहत हौं तो तेरी सी ॥
चढि गढ़ मढ़ दृढ कोट के कँगूरे कोपि,
नेकु धका दैहैं ढैहैं ढेलन की ढेरी-सी।
गुनु दसमाथ ! नाथ-साथ के हमारे कपि,
हाथ लंका लाइहै तो रहेगी हथेरी-सी ॥

उत्तर काण्ड

[१३]

वेद न पुरान गान, जानौं न विज्ञान ज्ञान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन प्रवीनता।
नाहिंन विराग, जोग जाग भाग तुलसी के,
दया-दान-दूबरो हौं, पाप ही की पीनता ॥
लोभ-मोह-काम कोह दोष-कोष मोसो कौन ?
कलि हू जो सीखि लई मेरियै मलीनता।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं
रावरे दयालु दीनबंधु, मेरी दीनता ॥

[१४]

किसबी, किसान-कुल, बनिक भिखारी भाट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी ।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि
अटत गहन-बन, अहन अखेट की ॥

ऊँचे-नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेचत बेटा बेटकी ।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें-बड़ी है आगि पेट की ॥

[१५]

मेरी जाति पाँति, न चहौं काहू की जाति पाँति,
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को ।
लोक-परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को ॥

अति ही अयानो, उपखानो नहिं बूझैं लोग,
'साह ही को गोत, गोत होत है गुलाम को' ।
साधु कै असाधु, कै भलो, कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को ॥

देवदत्त 'देव'

[नीचे रीतिकालीन कवि 'देव' की विभिन्न रसात्मक और वर्णन-पुष्ट
रताओं का संकलन किया जा रहा है। भक्ति, ऋतु वर्णन, रूपमाधुरी, (संयोग-
गार), पूर्वानुराग, विरह आदि के कवित्तों और सवैयों के साथ उत्तम
व के लक्षण में देव की मान्यता का परिचय कराने वाला रीत्यात्मक सवैया
संकलित है। परिष्कृत सौन्दर्य-बोध, मौलिक-उद्‌भावना-शक्ति, कर्णप्रिय
-सौन्दर्य की दृष्टि से देव के कवित्त-सवैये रीतिकालीन कवियों में उत्कृष्ट
टि के माने जाते हैं। नीचे दिये हुये कवित्त-सवैयों के पठन-पाठन से इस
त का समर्थन होगा।]

भक्ति

त्त :

[१]

ऐसो हौं जु जानतो कि जैहै तू विषै के संग,
ऐरे मन मेरे! हाथ-पायँ तेरे तोरतो।
आजु लगि कत नरनाहन की 'नाही' सुनि,
नेह सों निहारि हारि, बदन निहोरतो॥
चलन न देतो 'देव' चंचल, अचल करि,
चाबुक चितावनीन मारि मुँह मोरतो।
भारी प्रेम पाथर, नगारो दै, गरे सों बाँधि,
राधा-वर-विरद के वारिधि में बोरतो॥

[२]

धायँ फिरौ ब्रज में बधाये नित नंदजू के,
गोपिन सधाये नाचौं गोपिन की भीर में।

'देव' मति-मूढ़ै, तुम्हे ढूंढै कहाँ पावै, चढ़ै,
पारथ के रथ, पैठे जमुना के नीर मे ।।
आँकुस ह्वै धौरि हरनाकुस को फारयो उर;
साथी ना पुकारयो हते हाथी हिय-तीर मे;
विदुर की भाजी, बेर भीलनी के साथ, विप्र—
चाउर चबाय, दुरे द्रौपदी के चीर मे ।।

पावस-वर्णन

[३]

सवैया :

सुनि कै धुनि चातक-मोरन की, चहुँ ओरन कोकिल-कूकन सों,
अनुराग भरे हरि बागन मे सखि ! रागत राग अचूकन सों ।
कवि 'देव घटा उनई जु नई, बन-भूमि भई दल-दूकन सो,
रँग-राति हरी हहराति लता, भुकि जाति समीर के भूकन सों ।।

बसन्त

[४]

माधुरे भौंरनि, फूलनि, भौंरनि, बौरनि बौरनि बेलि बची है,
केसरि, किंसु, कुसुंभ, कुरौ, किरवार, कनैरनि रग रची है ।
फूले अनारनि, चंपक-डारनि, लै कचनारनि, नेह सची है,
कोकिल रागनि, नूत-परागनि, देखुरी ! बागनि फागु मची है ।।

कवित्त :

[५]

डारद्रुम-पलना, बिछौना नव पल्लव के,
सुमन-भिगूंला सोहै, तन छबि भारी दै ।

पवन झुलावै केकी-कीर बतरावैं 'देव',
कोकिल हलावै हुलसावै करतारी दै ।
पूरित पराग सों उतारो करै राई-नौन,
कुंद--कली--नायिका लतान सिर सारी दै ।
मदन महीपजू को बालक बसन्त, ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै, ॥

रूप-माधुरी

[६]

सवैया :

'देव' मैं सीस बसायो सनेह सों, भाल मृगम्मद-बिन्दु कै भाख्यो,
कंचुकि मैं चुपर्‌यो करि चोवा, लगाय लियो उर सो अभिलाख्यो ।
लै मखतूल गुहे गहने, रस मूरतिवंत सिंगार कै चाख्यो,
साँवरे लाल को साँवरो रूप मैं नैनन को कजरा करि राख्यो ॥

[७]

धार में धाय धँसी निरधार ह्वै, जाय फँसी, उकसीं न उबरी,
री ! अँगराय गिरी गहिरी, गहि फेरे फिरीं न घिरी नहिं घेरी ।
'देव' कछू अपनो बस ना, रस लालच लाल चितै भई चेरी,
बेगि ही बूडि गई पँखियाँ अँखियाँ मधु की मँखियाँ भई मेरी ॥

विरह-वर्णन

[८]

खोरि लौ खेलन आवति ए न तौ आलिन के मत मैं परती क्यों,
'देव' गुपालहि देखति ए न तौ या बिरहानल मैं बरती क्यों ।

माधुरी मंजु रसाल की डालि सुभाल-सी- ह्वैं उर मे गरती क्यों,
कोमल कूकि कै कोकिल कूर, करेजनि की किरचैं करती क्यों ?

[९]

कवित्त :

रीझि-रीझि रहसि-रहसि हँसि-हँसि उठै,
साँसैं भरि, आँसू भरि, कहत 'दई-दई' ।
चौंकि-चौंकि चकि-चकि उचकि-उचकि देव,
जकि-जकि बकि-बकि परत बई-बई ॥
दुहून को रूप-गुन दोऊ बरनत फिरैं,
घर न थिरात रीति नेह की नई-नई ।
मोहि-मोहि मोहन को मन भयो राधिका मे,
राधा मन मोहि-मोहि मोहन मई-मई ॥

[१०]

सवैया :

सावन ही मँगसीर गयो घर आँगन ही सब पौष गयो हरि,
तेज गयो गुन लै अपनो, अरु भूमि गई तनु की तनुता करि ।
'देव' जियै मिलिबेई की आस कै, आसहू पास अकास रह्यो भरि,
जा दिन तें मुख फेरि हँसि हरि हेरि हियो जु लियो हरिहू हरि ॥

[११]

साँवरो रूप रह्यो भरि नैनन, बैनन के रस सों श्रुति सान्यो,
गात मैं देखत गात तुम्हारोई, बात तुम्हारिय बात बखान्यो ।
ऊधो, हहा ! हरि सों कहियो, तुम हौ न इहाँ, यह हौं नहिं मान्यो,
या तन तें बिछुरे तो कहा, मन तें अनतै, जु बसो तब जान्यो ॥

[१२]

कवित्त :

हौं ही ब्रज, वृन्दावन मोही में बसत सदा,
जमुना-तरग स्याम रंग अवलीन की।
चहूँ ओर सुन्दर सघन वन देखियत,
कुंजन मे सुनियत गुंजन अलीन की।
बसीवट-तट नटनागर नटत मो सों,
रास के विलास की मधुर धुनि बीन की।
भरि रही भनक बनक ताल-ताननि की,
तनक-तनक तामें खनक चुरीन की।।

[१३]

बरुनि बघम्बर मे गूदरी पलक दोऊ,
कोये राते बसन भगौहे भेस रखियाँ।
बूडी जल ही मे दिन जामिनि रहति भौंहें,
घूम सिर छायो विरहानल बिलखियाँ।
आँसू ज्यो फटिक माल, लाल डोरे सेली पेन्हि,
भई है अकेली, तजि चेली सग सखियाँ।
दीजिये दरस 'देव' कीजिये सँजोगिनी सु,
जोगिनी ह्वै बैठी ये वियोगिनी की अँखियाँ।।

[१४]

झहरि-झहरि झीनी बूँद है परति मानो,
घहरि-घहरि घटा घिरी है गगन मे।।
आनि कह्यो श्याम मो सौं, चलो झूलिबे को आज,
फूली ना समानी भई, ऐसी हौं मगन में।।

चाहत उठ्योई, उडि गई सो निगोडी नींद,
सोइ गए भाग मेरे जागि वा जगन में ।
आँखि खोलि देखो, तो न घन हैं, न घनश्याम,
वेई छाई बूँदें मेरे आँसू ह्वै दृगन में ।

उत्तम-कवि

[१५]

सवैया :

जाके न काम न क्रोध-विरोध, न लोभ छुवै नहिं लोभ को छाहो,
मोह न जाहि रहे जग बाहिर, मोल जवाहिर तें अति चाहौ ।।
बानी पुनीत ज्यौं देवधुनि रस आरद सारद के गुन गाहौ,
सील ससी, सविता छविता, कविताहि रचै कवि ताहि, सराहौ ।।

पद्माकर

["स्वाभाविक तथा मधुर कल्पना, हाव-भाव के प्रत्यक्षवत् मूर्ति-विधान शब्दाडम्बर और ऊहात्मक वैचित्र्य से मुक्त रहकर चमत्कार चातुरी के साथ सुघर कल्पना वाले भाव-चित्रों की उपस्थिति, अन्तःभावनाओं की व्यंजनाशक्ति के द्वारा सजीवता और साकारता के साथ बड़े कौशल के साथ सजावट, चित्रांकन बाहुल्य और विदग्धता के साथ निर्वाह के लिए" पद्माकर रीतिकालीन कवियों में अद्वितीय माने जाते हैं। यहाँ इनकी इस काव्यमयी प्रतिभा का प्रतिनिधित्व करने वाले कवित्त संकलित हैं, जिनमें भक्ति, श्रृंगार, हास्य आदि रसों की अभिव्यक्ति के साथ कुशल वर्णन-क्षमता का परिचय मिलता है।]

भक्ति

[१]

प्रलैके पयोनिधि लौं लहरैं उठन लागीं,
लहरा लग्यो त्यों होन पौन पुरवैया को,
भरि-भरि भौंभरी, बिलोकि मझधार परी,
धीर ना धरात 'पद्माकर' सेवैया को।
कहाँ वार कहाँ पार, जानि हूँ न जात कछू,
दूसरो दिखात ना, खेवैया और नैया को,
बहन न पैहे घेरि घाटहि लगै है ऐगो,
प्रमिट भरोसो मोहि मेरे रघुरैया को॥

शिव-स्तुति

[१]
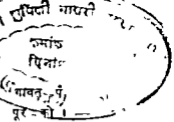
देव नर किन्नर कितेक गुन गावत पै,
पावत न पार वा अनन्तगुन पूरे को।
कहै पद्माकर सुगाल के बजावत ही,
काज करि देत जन जाचक जरूरे को॥
चन्द की छटान-युत पन्नग-फटान-युत,
मुकुट विराजै जटा जूटन के जूरे को।
देखो त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,
पैये फल चारि फूल एक दै धतूरे को।

श्री कृष्ण के प्रति

[२]

देखु 'पद्माकर' गोविन्द की अमित छवि,
सकर समेत विधि आनन्द सो बाढ़ो है,
भिभिकत, भूमत, मुदित, मुसकात, गहि,
अंचल को छोर दोउ हाथन सो काढ़ो है,
पटकत पाँव, होत पैंजनी मुनुक रव,
नेक नेक नैनन ते नीर कन काढ़ो है,
आगे नन्दरानी के तनिक पय पीबे काज,
तीन लोक ठाकुर सो ठुनुकत ठाढ़ो है॥

शिव-विवाह

[४]

हँसि हँसि भाजैं देखी दुलह दिगम्बर को,
पाहुनी जे आवैं हिमाचल के उछाह मे।

कहै 'पद्माकर' सु काहू सों कहै का कहा,
जोई जहाँ देखै सो हँसई तहाँ राह में ।
मगन भयेऊ हँसै नगन महेस ठाढे,
और हँसे एऊ हँसि-हँसि के उमाह में,
सीस पर गंगा हँसै, भुजनि भुजगा हँसें,
हास ही को दगा भयो नगा के विवाह में ।

गंगा-गौरव

[५]

कूरम पै कोल, कोल हूँ पै शेष कुण्डली है,
कुण्डली पै फबी फैल सुफन हजार की,
कहै 'पद्माकर' त्यो फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत पहार की ।
रजत पहार पर संभु सुरनायक है,
सभु पर ज्योति जटाजूट है अपार की ।
संभु की जटान बीच चन्द की छुटी है छटा,
चन्द की छटान पै छटा है गगधार की ।

[६]

गंगा कै चरित लखि भाख्यो जमराज यह,
ऐरे चित्रगुप्त मेरे हुकम पै ध्यान दै ।
कहै पद्माकर नरक केस मूँदि राखि,
मूँदि दरवाजन को तजि यह थान दै ।
देख यह देवनदी, कीन्हे सब देव याते,
दूतन बुलाय के विदा के बेगि पान दै ।

फारि डारि फरद, न राख रोजनाम कहूँ,
खाता खत जान दै, बही को बहि जान दै।

[७]

जैसो तू मोको कहूँ नेकहू डरात हुतो,
तैसो अब हौं हूँ तोहि नेकहू न डरिहौं,
कहै पद्माकर प्रचंड जो परैगो तौ,
उमडि करि तोसों भुज-दंड ठोकि लरिहौं।
चलो चलु, चलो चलु बिचलु न बीच ही तैं,
कीच-बीच नीच तो कुटुम्ब ही कचरिहौं,
ऐरे दगादार, मेरे पातक अपार
तोहि गंगा की कछार में पछारि छार करिहौं।

[८]

लोचन असम, अंग भसम चिता की लाइ,
तीनों लोकनायक सो कैसे को ठहरतो।
कहै 'पद्माकर' बिलोकि इमि ढंग जाके,
वेदन पुरान गान कैसे अनुसरतो।
बाँधि जटाजूट बैठी परवत कूट माहिं,
महाकाल कूट कहौ कैसे कै ठहरतो।
पीवे नित भंगै रहै प्रेतन के संगै,
पूछतो को नंगै को न गंगै सीस धरतो।

वर्षा

[६]

भौंरन की गुंजन बिहार वन कुंजन में,
मंजुल मल्हारिन को गावनो लगत है।

कहै 'पद्माकर' गुमान हूँ तैं, मानहू तैं,
प्रानहूँ तैं प्यारो मन-भावनो लगत है ।
भौंरन को सोर घनघोर, चहुँ ओरन,
हिण्डोरन को वृन्द छवि छावनो लगत है ।
नेह सरसावन में मेह बरसावन मे,
सावन के झूलिबो सोहावनो लगत है ।

[१०]

मल्लिकान मजुल मलिंद मतवारे मिले,
मन्द-मन्द मारूत मुहीम मनसा की है ।
कहै 'पद्माकर' त्यो नदन नदीन नित,
नागर नवेली की त्यो नजर नसाकी है ।
दौरत दरेरो देत दादुर सु दूँदै दीह,
दामिनी दमकत दिसान मे दिसा की है ।
बद्दलन बुन्दन बिलोकि बगुलान बाग,
बँगलान बेलिन बहार बरषा की हैं ।।

[११]

बरसत मेह नेह सरसत अंग अंग,
झुरसत देह जैसे जरत जवासो है ।
कहै 'पद्माकर' कदम्ब के कदम्बन पै,
मधुपन कीन्हो आई महल मवासो है ।
ऊधो यह उधम जताई दीजो मोहन को,
ब्रज को सुबासो भयो अगिनि अवासो है ।
पातकी पपीहा जलपान को न प्यासो काहू,
बिथित वियोगिनी के प्रानन को प्यासो है ।

शरद्-ज्योत्स्ना

[१२]

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै,
वृन्दावन बीथिन बहार बंसीवट पै,
कहै 'पद्माकर' अखण्ड रासमंडल पै,
मंडित उमडी महा कालिंदी के तट पै,
छिति पै छान पै छाजन छतान पै,
ललित लतान पै लाडिली की लट पै,
आयी भली छायी यह सरद जुन्हायी,
जिहि पाई छवि आजुही कन्हाई के मुकुट पै।

बसन्त-वैभव

[१३]

और भाँति कुंजन मे गुंजरत भौंर भीर,
औरै भाँति बौरन के भौंरन के ह्वै गए।
कहै 'पद्माकर' सु औरै भाँति गलियानि,
छलिया छबीले छैल औरै छबि छ्वै गए।
और भाँति विहग समाज मे अवाज होति,
अबै ऋतुराज के न आजु दिन द्वै गए।
औरै रस औरै रीति, औरै राग औरै रङ्ग,
औरै तन औरै मन औरै बन ह्वै गए।

[१४]

कूलन मे केलि मे कछारन मे कुंजन मे,
क्यारिन मे कलिन कलीन किलकन्त है।

कहै 'पद्माकर' परगान में पौन हूँ में,
पानन में पीक मे पलासन पगन्त है।
द्वार मे दिसानि मे दुनी मे देस देसन में,
देखो दीप दीपन में दीपत दिगन्त है।
बीथिन मे, ब्रज मे, नवेलिन मे, वेलिन मे,
बनन में बागन मे बगरो बसन्त है।

दान-वीरता

[१५]

संपत्ति सुमेर की कुबेर की जु पावे ताहि,
तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना,
कहै 'पद्माकर' सु हेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के बितरि बिचारै ना,
गज गजबकस महीप रघुनाथ राव,
याहि गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना,
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गरे तैं निज गोद तैं उतारै ना।

मैथिलीशरण गुप्त

[नीचे की कविताएँ श्री गुप्त जी के 'यशोधरा' काव्य में संकलित हैं जिसे आलोचकों ने गीतात्मक-नाट्य-प्रबन्ध कहा है। पति-परित्यक्ता यशोधरा के हार्दिक दुःख की व्यंजना कवि ने जिस मार्मिकता के साथ इस काव्य में कराई है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

पहली कविता में संसार की असारता और माया-ज्ञान के सम्बन्ध में गौतम के मानसिक द्वन्द्व का चित्रण है। दूसरी 'महाभिनिष्क्रमण' कविता के चुने हुए अंश हैं जिसमें अमृत तत्त्व की खोज में जाते समय गौतम ने सांसारिक ऊहापोह को त्यागते हुए संकल्प की दृढ़ता का जो परिचय दिया है उसका चित्र है। तीसरी और चौथी कविताओं में अमिताभ के चोरी-चोरी चले जाने पर यशोधरा के हृदय की कसक और उसकी विरह-वेदना का मार्मिक चित्रण है। पांचवीं कविता में राहुल और यशोधरा का संवाद है जिसमें बाल सुलभ औत्सुक्य और जन्मजात प्रतिभा-सम्पन्नता के साथ-साथ विश्व-प्रेम की उदारता की झांकी है। अन्तिम कविता अमिताभ के 'बुद्ध' बनकर लौटने के पश्चात् चिर-विरहिणी यशोधरा आकुल हृदय से जिस प्रकार उनका स्वागत करती है उसका मार्मिक चित्रण है। सरसता, सरलता, माधुर्य भावों की तीव्रानुभूति और मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति इन कविताओं की विशेषताएँ हैं।]

: १ :

घूम रहा है कैसा चक्र!
वह नवनीत कहाँ जाता है, रह जाता है तक्र।
पड़े हो इसमें जब तक,
क्या अन्तर आया है अब तक,
सहें अन्ततोगत्वा कब तक—

हम इसकी गति वक्र।
घूम रहा है कैसा चक्र ?

कैसे परित्राण हम पावें ?
किन देवों को रोवें-गावें ?
पहिले अपना कुशल मनावें—

वे सारे गुर शक्र,
घूम रहा है कैसा चक्र ?

बाहर से क्या जोड़ूँ-जाड़ूँ ?
मैं अपना ही पल्ला झाड़ूँ।
तब है जब वे दाँत उखाड़ूँ,

रह भव-सागर नक्र।
घूम रहा है कैसा चक्र ?

२ महाभिनिष्क्रमण

आशा लूँ या दूँ मैं अकाम ?
ओ क्षण-भंगुर भव, राम राम !

[१]

रख अब अपना यह स्वप्न-जाल,
निष्फल मेरे ऊपर न डाल।
मैं जागरूक हूँ, ले सँभाल—

निज राज-पाट, धन, धरणि धाम।
ओ क्षण-भंगुर भव, राम-राम !

रूपाश्रय तेरा तरुण गात्र,
कह, वह कब तक है प्राण-पात्र ?
भीतर, भीषण कंकाल मात्र,

बाहर-बाहर है टीम-टाम ।
ओ क्षण-भंगुर भव, राम-राम !

[३]

प्रच्छन्न रोग हैं, प्रकट भोग,
सयोग मात्र भावी वियोग ।
हा! लोभ-मोह मे लीन लोग,

भूले हैं अपना अपरिणाम ।
ओ क्षण-भंगुर भव, राम-राम !

[४]

यह-आर्द्र-शुष्क, यह उष्ण-शीत
यह वर्तमान, यह तू व्यतीत ।
तेरा भविष्य क्या मृत्यु-भीत ?

पाया क्या तूने धूम-धाम ?
ओ क्षण-भंगुर भव, राम-राम ।

[५]

मैं सूंघ चुका वे फुल्ल फूल ,
झड़ने को हैं सब झटित झूल ।
सब देख चुका हूं मैं, समूल—

सड़ने को हैं वे अखिल ग्राम।
ओ क्षण-भंगुर भव, राम-राम।

[६]

इस मध्य-निशा में ओ अभाग,
तुझको तेरे ही अर्थ त्याग।
जाता हूँ मैं यह वीतराग,
दयनीय, ठहर तू क्षीण-क्षाम।
ओ क्षण-भंगुर भव, राम-राम!

[७]

मैं त्रिविध-दुःख-विनिवृत्ति-हेतु,
बाँधू अपना, पुरुषार्थ-सेतु।
सर्वत्र उड़े कल्याण-केतु,
तब है मेरा सिद्धार्थ नाम।
ओ क्षण-भंगुर भव, राम-राम।

[८]

यह कर्मकाण्ड-ताण्डव-विकास,
वेदी पर हिंसा-हास-रास।
लोलुप-रसना का लोल-लास,
तुम देखो ऋग्, यजु और साम।
ओ क्षण-भंगुर भव, राम-राम।

[१३]

हे राम, तुम्हारा वंश-जात,
सिद्धार्थ तुम्हारी भाँति तात ।
घर छोड़ चला यह आज रात,
आशीष उसे दो, लो प्रणाम ।
'यों क्षण-भंगुर भव, राम-राम !

× × ×

: ३ :

सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात,
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात ।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते ?

मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहिचाना ?
मैंने मुख्य उसी को जाना,
जो वे मन में लाते ।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते ।

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में ।
हमीं भेज देती हैं रण में—
क्षात्र-धर्म के नाते ।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते ।

हुआ न यह भी भाग्य अभागा,
किस पर विफल गर्व अब जागा ?
जिसने अपनाया था, त्यागा,
रहे स्मरण ही आते ।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते ।

नयन उन्हें हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते ।
सदय हृदय वे कैसे सहते ?
गये तरस ही खाते ।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते ।

जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों, इस जन के दुख से,
उपालम्भ दूँ मैं किस मुख से ?
आज अधिक वे भाते ।
सखि, वे मुझसे कह कर जाते ।

गये लौट भी वे आवेंगे,
कुछ अपूर्व अनुपम लावेंगे,
रोते प्राण उन्हें पावेंगे ?
पर क्या गाते गाते ?
सखि, वे मुझसे कह कर जाते ।

× × ×

: ४ :

कूक उठी है कोयल काली ।
ओ मेरे वनमाली !

चक्कर काट रही है रह रह, सुरभि मुग्ध मतवाली,
अम्बर ने गहरी छानी यह, भू पर दुगुनी ढाली ।
ओ मेरे वनमाली ।

समय स्वयं यह सजा रहा है, डगर डगर में डाली,
मृदु समीर-सह बजा रहा है, नीर तीर पर ताली ।
ओ मेरे वनमाली ।

लता कण्टकित हुई ध्यान से ले कपोल की लाली,
फूल उठी है हाय ! मान से प्राण भरी हरियाली ।
ओ मेरे वनमाली ।

ढलक न जाय अर्घ्य आँखों का, गिर न जाय यह थाली,
उड़ न जाय पंछी पाँखों का, आओ हे गुणशाली ।
ओ मेरे वनमाली ।
कूक उठी है कोयल काली ।

× × ×

: ५ :

राहुल

ऐसे गिरि, ऐसे वन, ऐसी नदी, ऐसे कूल,
ऐसा जल, ऐसे थल, ऐसे फल, ऐसे फूल,
ऐसे खग, ऐसे मृग, होंगे अम्ब क्या वहाँ,
करते निवास होंगे, एकाकी पिता जहाँ ?

यशोधरा

बेटा, इस विश्व में नहीं है एकदेशता,
होती कहीं एक कहीं दूसरी विशेषता ।

मधुर बनाना सब वस्तुओं को नाता है,
भाता वहीं उनको, जहाँ जो जन्म पाता है।

राहुल

अम्ब क्या पिता ने यहीं जन्म नहीं पाया है?
क्यों स्वदेश छोड़, परदेश उन्हें भाया है?

यशोधरा

घर, घर छोड़ के गये हैं अन्य हेतु से
जोड़ लिया नाता है, उन्होंने सब सृष्टि से,
हृदय विशाल और उनका उदार है,
विश्व को बनाना चाहता जो परिवार है।

राहुल

लाभ इससे क्या अम्ब, अपनों को छोड़के,
बैठ जायें दूसरों से, वे सम्बन्ध जोड़ के।

यशोधरा

अपनों को छोड़ कहाँ [illegible] उन्होंने?
अपनों के जैसा ही सबों का [illegible]।

राहुल

[illegible]
[illegible]

× × ×

६ :

[illegible]

[illegible]
[illegible]

नाथ, विजय है यही तुम्हारी,
दिया तुच्छ को गौरव भारी।
अपनाई मुझ-सी लघु नारी,

होकर महा महान् !
पधारो, भव भव के भगवान् !

मैं थी सन्ध्या का पथ हेरे,
आ पहुँचे तुम सहज सवेरे।
धन्य कपाट खुले ये मेरे !

दूँ अब क्या नव-दान ?
पधारो, भव भव के भगवान् !

मेरे स्वप्न आज ये जागे,
अब वे उपालम्भ क्यों भागे ?
पाकर भी अपना धन आगे,

भूली-सी मैं भान !
पधारो, भव भव के भगवान् !

दृष्टि इधर जो तुमने फेरी,
स्वयं शान्त जिज्ञासा मेरी।
भय-संशय की मिटी अँधेरी,

इस आभा की आन !
पधारो, भव भव के भगवान् !

यही प्रणति उन्नति है मेरी,
हुई प्रणय की परिणति मेरी,
मिली आज मुझको गति मेरी,

क्यो न करूँ अभिमान ?
पधारो, भव भव के भगवान् !

पुलक पक्ष्म परिगीत हुए ये,
पद-रज पोंछ पुनीत हुए ये !
रोम रोम शुचि-शीत हुए ये,

पाकर पर्व-स्नान।
पधारो, भव भव के भगवान् !

इन अधरों के भाग्य जगाऊँ,
उन गुल्फो की मुहर लगाऊँ !
गई वेदना, अब क्या गाऊँ ?

मग्न हुई मुस्कान।
पधारो, भव भव के भगवान् !

कर रक्खा, यह कृपा तुम्हारी,
मैं पद-पद्मो पर ही वारी।
चरणामृत करके ये खारी,

मधु करूँ अब पान।
पधारो, भव भव के भगवान् !

जयशंकर प्रसाद

[प्रस्तुत काव्य-गीत 'प्रसाद' जी के गीत-संग्रह 'लहर' से संकलित हैं। गीति-काव्य की दृष्टि से 'प्रसाद' का यह अत्यन्त समृद्ध संग्रह है। गीतों के लिए जिस घनीभूत भावना, संग्रथित अभिव्यक्ति, मार्मिक नियोजन और प्रौढ़ चिन्तन की आवश्यकता होती है, 'लहर' में यह देखा जा सकता है। यहाँ उनके पाँच गीत 'जागरणगीत' 'वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे' 'लहर' 'मेरी आँखों की पुतली मे तू बनकर प्राण समाजारे' और 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' संकलित है। दूसरे और चौथे गीत में प्रसाद के व्यक्तित्व का विस्तार देखा जा सकता है। 'लहर' में उनके प्राकृतिक चित्रण के साथ हार्दिक संवेदनात्मक सामंजस्य का अनोखा मेल है। 'जागरण गीत' जीवन गीत है और 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' जलियान वाला बाग से सम्बद्ध है जिसमें राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हुई है। चिन्तन की प्रौढ़ता, अनुभूति की गम्भीरता, छायावादी काव्य की मार्मिक अभिव्यंजना-शक्ति आदि सभी के दर्शन इन गीतों में हो —ते हैं।]

जागरण गीत

[१]

बीत विभावरी जाग री!
अम्बर-पनघट पर डुबो रही तारा-घट ऊषा नागरी।
खग कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा।
लो यह लतिका भी भर
मधु-मुकुल नवल रस गागरी।।
अधरों मे राग अमन्द पिये,
अलकों मे मलयज बन्द किये।

तू अब तक सोई है आली !
आँखो मे भरे विहाग री ।

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे

[२]

कुछ दिन कितने सुन्दर थे ?
जब सावन-घन सघन बरसते—
इन आँखो की छाया भर थे !
सुर-धनु-रंजित नव-जलधर से
भरे, क्षितिज-व्यापी अम्बर मे,
मिले चूमने जब सरिता के ।
हरित कूल युग मधुर अधर थे ।
प्राण पपीहा के स्वर वाली,
बरस रही थी जब हरियाली ।
रस-जलकण मालती मुकुल से,
जो मदमाते गन्ध विधुर थे ।
चित्र खीचती थी जब चपला,
नील मेघ पट पर वह विरला ।
मेरी जीवन-स्मृति के जिसमे—
खिल उठते वे रूप मधुर थे ।

लहर

[३]

उठ, उठ, री, लघु-लघु लोल लहर !
करुणा की नव अँगड़ाई-सी
मलयानिल की परछाँई-सी
इस सूखे तट पर छिटक छहर ।
शीतल कोमल चिर कम्पन सी,

दुर्ललित हठीले बचपन-सी,
तू लौट कहाँ जाती है री,
यह खेल, खेल ले ठहर ठहर!
उठ-उठ गिर-गिर फिर-फिर आती,
नर्तित पद-चिह्न बना जाती,
सिकता की रेखाएँ उभार—
भर जाती अपनी तरल सिहर।
तू भूल न री, पंकज-वन में,
जीवन के इस सूने पन में,
'ओ' प्यार पुलक से भरी ढुलक,
आ चूम पुलिन के विरस अधर।

मेरी आँखों की पुतली में तू बन कर प्राण समाजा रे

[४]

मेरी आंखो की पुतली मे
तू बन कर प्राण समा जा रे।
जिससे कण-कण मे स्पन्दन हो,
मन मे मलयानिल चन्दन हो,
करुणा का नव अभिनन्दन हो,
वह जीवन गीत सुना जा रे।
खिंच जाय अधर पर वह रेखा,
जिसमे अङ्कित हो मधु लेखा,
जिसको वह विश्व कर देखा,
वह स्मृति का चित्र बना जा रे।

शेरसिंह का शस्त्र समर्पण ?

[५]

"ले लो यह शस्त्र

गौरव ग्रहण करने का रहा कर मैं—
अब तो न लेश मात्र।
लालसिंह! जीवित कलुष पचनद का
देख दिये देता हूँ
सिंहों का समूह नख-दन्त आज अपना"
'अरी रण-रंगिनी!
सिक्खों के शौर्य भरे जीवन की संगिनी!
कपिशा हुई थी लाल तेरा पानी पान कर।
दुर्मद दुरन्त धर्मदस्युओं की त्रासिनी—
निकल, चली जा तू प्रतारण के कर से।"
"अरी वह तेरी रही अन्तिम जलन क्या?
तोपें मुँह खोले खड़ी देखती थीं त्रास से
चिलियान वाला में
आज के पराजित जो विजयी थे कल ही,
उनके समर वीर कर में तू नाचती,
लप-लप करती थी-जीभ जैसे यम की,
उठी तू न लूट त्रास भय के प्रचार को,
दारुण निराशा भरी आँखों से देखकर
दृप्त अत्याचार को
एक पुत्र-वत्सला दुराशामयी विधवा
प्रकट पुकार उठी प्राण भरी पीड़ा से—
और भी;
जन्म भूमि दलित विकल अपमान से
त्रस्त हो कराहती थी
कैसे फिर रुकती?"
"आज विजयी हो तुम

और हैं पराजित हम
तुम तो कहोगे, इतिहास भी कहेगा यही,
किन्तु यह विजय प्रशंसा भरी मन की—
एक छलना है ।
वीर-भूमि पंचनद वीरता से रिक्त नहीं ।
काठ के हों गोले जहां,
आटा बारूद हो,
और पीठ पर दुरन्त दशनों का त्रास
छाती लड़ती हो भरी आग, बाहु बल से
उस युद्ध में तो बस मृत्यु की विजय
सतलज के तट पर मृत्यु श्याम सिंह की
देखी होगी तुमने भी वृद्ध वीर-मूर्ति वह
तोड़ा गया पुल प्रत्यावर्तन के पथ में
अपने प्रवंचकों से ।
लिखता अदृष्ट था विधाता वाम कर से ।
छल में विलीन बल, बल में विषाद था—
विकल विलास का ।
यवनों के हाथों से स्वतन्त्रता को छीनकर
खेलता था यौवन-विलासी मत्त पंचनद—
प्रणय विहीन एक वासना की छाया में ।
फिर भी लड़े थे हम निज प्राण पण से ।
कहेगी शतद्रु शत-संगरों की साक्षिणी,
सिक्ख थे सजीव—
स्वत्व रक्षा में प्रबुद्ध थे ।
जीना जानते थे ।
मरने को मानते थे सिक्ख ।
किन्तु आज उनकी अतीत वीर-गाथा हुई—

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

[यहाँ 'निरालाजी' की काव्य-प्रतिभा का बोध कराने वाली विभिन्न प्रकार की पांच कविताओं का संकलन किया गया है। 'जीवन भर दो' जैसा नवोन्मेष का गीत है तो 'मैं अकेला' जैसा कवि का जीवन-सम्बन्धी गीत भी है। 'खण्डहर के प्रति' में उन्होंने भारत की गरिमा का दर्शन कराया है तो 'भिक्षुक' जैसी मार्मिक प्रगतिवादी कविता में हृदयस्पर्शी चित्र दिया है। 'बादल राग' में उन्होंने विप्लव का आह्वान किया है। कविताओं के शिल्प-प्रयोग की दृष्टि से भी वैविध्य है। सुन्दर लयात्मक तुकान्त कविता के साथ मुक्तक छंद का सफल और जीवन्त प्रयोग भी द्रष्टव्य है।]

जीवन भर दो

[१]

पथ पर मेरा जीवन भर दो
बादल हे, अनन्त अम्बर के
बरस सलिल गति उर्मिल कर-दो !

तट हों विटप-छाँह के निर्जन
सस्मित कलि-दल-चुम्बित जल-कण,
शीतल शीतल बहे समीर गण
कूजें द्रुम-विहगगण, वर दो।

दूर ग्राम की कोई वामा
आये मन्द—चरण अभिरामा,

अवसन जल मे उनरे श्यामा
भांकित उर-छवि - सुन्दरतर हो !

खण्डहर के प्रति

[२]

खण्डहर ! खड़े हो तुम आज भी ?
अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज ?
विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यो हमें—
करुणाकर, करुणामय गीत सदा गाते हुए ?
पवन-संचरण के साथ ही
परिमल-पराग सम अतीत की विभूति रज
आशीर्वाद पुरुष पुरातन का
भेजते सब देशों मे,
क्या है उद्देश्य तब ?
बन्धन-विहित भव
ढीले करते हो भव-बन्धन नर-नारियो के
अथवा
हो मलते कलेजा, पड़ा जरा-जीर्ण
निर्निमेष नयनों से
बाट जोहते हो तुम मृत्यु की
अपनी सन्तानों से बूंद भर पानी को तरसते हुए ।
किंवा, हे यशोराशि
कहते हो आँसू बहाते हुए
"आर्त भारत ! जनक हूँ मैं
जैमिनि पतञ्जलि व्यास ऋषियों का,
मेरी ही गोद पर शैशव—विनोद कर

तेरा है बढ़ाया मान
राम-कृष्ण भीमार्जुन-भीष्म नर देवों ने
तुमने मुख फेर लिया
सुख की तृष्णा से अपनाया है गरल
हो बसे नव छाया में,
नव स्वप्न ले जगे,
भूले वे मुक्त प्रान साम-गान सुधा-पान
बरसो आसीस, हे पुरुष पुराण
तव चरणों में प्रणाम है :

मैं अकेला

[३]

मैं अकेला,
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य वेला ।

पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आरही,
हट रहा मेला ।

जानता हूँ, नदी झरने
जो मुझे थे पार करने
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख
कोई नहीं भेला ।

भिक्षुक

[४]

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।
पेट—पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए
भूख से सूख होठ जब जाते,
दाता भाग्य-विधाता से क्या पाते
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते,
चाट रहे जूँठी पत्तल को कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए,
ठहरो, अहा मेरे हृदय मे है अमृत मैं सींच दूँगा,
अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम,
तुम्हारे दु:ख मैं अपने हृदय मे खींच लूँगा।

बादल राग

[५]

तिरती है समीर—सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया

जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया
यह तेरी रण तरी,
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी गर्जन से सजग, सुप्त अंकुर
उर मे पृथ्वी के, आशाओ से
नव जीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे है, ऐ विप्लव के बादल
फिर-फिर ।

बार-बार गर्जन,
वर्षण है मूसलधार,
हृदय थाम लेता संसार,
सुन सुन घोर वज्र हुंकार,
अशनिपात से शायित उन्नत शत-शत वीर,
क्षत—विक्षत हत अचल—शरीर,
गगनस्पर्शी स्पर्धा—धीर
हँसते हैं छोटे पोधे लघु—भार शस्य अपार,
हिल—हिल,
खिल—खिल,
हाथ हिलाते,
तुझे बुलाते,
विप्लव रव से छोटे ही शोभा पाते ।
अट्टालिका नही है रे
आतंक—भवन
सदा पंक ही पर होता जल-विप्लव प्लावन
क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से सदा छलकता नीर,

रोग—शोक में भी हँसता है शैशव का सुकुमार शरीर
रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,
अँगना-अङ्ग से लिपटे भी
आतङ्क-अङ्क पर काँप रहे हैं।
धनी, वज्रगर्जन से, बादल !
त्रस्त नयन—मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण—बाहु, है शीर्ण-शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर,
चूँस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही है आधार,
ऐ जीवन के पारावार।

जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया
यह तेरी रण तरी,
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी गर्जन से सजग, सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नव जीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल
फिर-फिर।

बार-बार गर्जन,
वर्षण है मूसलधार,
हृदय थाम लेता संसार,
सुन सुन घोर वज्र हुंकार,
अशनिपात से शायित उन्नत शत-शत वीर,
क्षत—विक्षत हत अचल—शरीर,
गगनस्पर्शी स्पर्धा—धीर
हँसते हैं छोटे पौधे लघु—भार शस्य अपार,
हिल—हिल,
खिल—खिल,
हाथ हिलाते,
तुझे बुलाते,
विप्लव रव से छोटे ही शोभा पाते।
अट्टालिका नहीं है रे
आतंक—भवन
सदा पंक ही पर होता जल-विप्लव प्लावन
क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से सदा छलकता नीर,

रोग—शोक में भी हँसता है शैशव का सुकुमार शरीर
रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष,
अंगना-अङ्ग से लिपटे भी
आतंक-अङ्क पर काँप रहे हैं।
धनी, वज्रगर्जन से, बादल !
त्रस्त नयन—मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण—बाहु, है शीर्ण-शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर,
चूँस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही है आधार,
ऐ जीवन के पारावार।

श्री सुमित्रानन्दन पंत

[नीचे दी हुई कविताएँ पंत के काव्य-संग्रह 'गुंजन' में से संकलित हैं, जिसका प्रकाशन सन् १९३२ में हुआ था। कवि ने इसे अपने प्राणों का 'उन्मन गुंजन' कहा है। इस संग्रह में कवि नये जीवन के मोड़ से अभिव्यक्त हुआ है, क्योंकि उसमें संवेदना, अभिव्यंजना और चिन्तन को नयी दिशा मिली है। यहाँ 'गुंजन' का प्रतिनिधित्व करने वाली 'जग के उर्वर आँगन में' 'चाँदनी', 'फूलों का ह्रास', 'संध्या-तारा', 'मानव', 'तप' और 'नौका विहार' आदि रचनाएँ संकलित हैं जिनमें कवि की आत्मिक तल्लीनता, प्राकृतिक सौन्दर्य, मानवता का मंगलगान आदि के साथ—साथ रूपात्मक संकेतों के भीतर से नया रस-बोध कराने की क्षमता के दर्शन होते हैं। इनमें सहज, सौम्य, प्रसन्न-चेता व्यक्तित्व के माध्यम से प्रकृति और मानव के सुन्दर और शोभन आयामों का सृजन हुआ है।]

जग के उर्वर आँगन में

[१]

जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन !
बरसो लघु-लघु तृण तरु पर
हे चिर अव्यय, हे चिर नूतन

बरसो कुसुमों में मधु बन,
प्राणों में अमर प्रणय-धन,
स्मिति-स्वप्न अधर-पलकों में
उर अङ्गों में सुख-यौवन !

छू-छू जग के मृत रज-कण
करदो तृण-तरु मे चेतन,
मृण्मरण बाँध दो जग का
दे प्राणो का आलिगन !

बरसो सुख बन, सुषमा बन,
बरसो जग-जीवन के घन !
दिशि-दिशि में औ'पल-पलमे
बरसो ससृति के सावन !

चाँदनी

[२]

जग के दुख-दैन्य-शयन पर
यह रुग्णा — जीवन — बाला
रे, कब से जाग रही, वह,
आँसू की नीरव माला !

पीली पड़, निर्बल, कोमल,
कृश देह-लता, कुम्हलाई;
विवसना लाज मे लिपटी,
साँसो मे शून्य समाई !

रे म्लान अङ्ग, रग यौवन ?
चिर मूक, सजल, नत चितवन !
जग के दुख से जर्जर उर,
बस मृत्यु शेष है जीवन !

वह अपनी ओर को दौड़ी,
जग के सौरभ यौवन पर,
झलकी विरह की ज्वाला,
प्यारे नव-जीवन का वर !

फूलों का हार

[१]

लाई हूँ फूलों का हार,
लोगी मोल, लोगी मोल ?
तरल तुहिन-वन का उपहार,
लोगी मोल, लोगी मोल ?

फैल गई मधु-ऋतु की ज्वाल,
जल-जल उठती वन की डाल !
कोकिल के कुछ कोमल बोल
लोगी मोल, लोगी मोल ?

उमड़ पड़ा पावस परिप्रोत
फूट रहे नव-नव जल स्रोत !
जीवन की ये लहरें लोल
लोगी मोल, लोगी मोल ?

विरल जलद पट खोल अजान
छाई शरद रजत मुसकान,
यह छवि की ज्योत्स्ना अनमोल
लोगी मोल, लोगी मोल ?

पश्चिम नभ में हूँ रहा देख
उज्ज्वल, अमंद नक्षत्र एक
अकलुष अनिन्द्य नक्षत्र एक, ज्यों मूर्तिमान ज्योतित विवेक,
उर में हो दीपित अमर टेक,
किस स्वर्णाकांक्षा का प्रदीप, वह लिए हुए किस के समीप ?
मुक्तालोकित ज्यों रजत सीप,
क्या उसकी आत्मा का चिर धन, स्थिर अपलक नयनों का चिन्तन
क्या खोज रहा वह अपनापन ।
दुर्लभ रे दुर्लभ, अपनापन, , लगता यह निखिल विश्व निर्जन,
वह निष्फल इच्छा से निर्धन ।
आकांक्षा का उच्छ्वसित वेग
मानता नहीं बन्धन विवेक,
चिर आकांक्षा से ही थर-थर, उद्वेलित रे, अहरह सागर,
नाचती लहर पर हहर लहर ।
अविरत इच्छा ही में नर्तन, करते अबाध रवि शशि उडुगण,
दुस्तर आकांक्षा का बन्धन ।
रे उडु क्या जले प्राण विफल, क्या नीरव-नीरव नयन सजल,
जीवन निसंग रे व्यर्थ विफल ।
एकाकीपन का अन्धकार, दुस्सह है इसका मूकभार,
इसके विषाद का रे न पार ।
चिर अविचल पर तारक अमंद ।
जानता नहीं वह छन्द बंध
वह रे अनन्त का मुक्त मीन, अपने असंग सुख से विलीन,
स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन ।
निष्कंप शिखा-सा वह निरुपम, भेदता जगत जीवन का तम,
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र वह सम ।
गुंजित अलि-सा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन अन्धकार,

हलका एकाकी व्यथा भार,
जगमग जगमग नभ का आँगन, लद गया कुन्द कलियों से घन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन ।

मानव

[५]

तुम मेरे मन के मानव,
मेरे गानों के गाने,
मेरे मानस के स्पंदन,
प्राणों के चिर पहचाने
मेरे विमुग्ध नयनों की
तुम कांत-कनी हो उज्ज्वल,
सुख के स्मिति की मृदु रेखा
करुणा के आँसू कोमल ।
सीखा तुमसे फूलों ने,
मुख देख मन्द मुसकाना,
तारों ने सजल-नयन हो !
करुणा-किरणें बरसाना !
सीखा हँसमुख लहरों ने,
आपस में मिल खो जाना,
अलि ने जीवन का मधु पी
मृदु राग प्रणय के गाना !
पृथ्वी की प्रिय तारावली,
जग के वसन्त के वैभव
तुम सहज सत्य सुन्दर हो,
चिर आदि और चिर अभिनव,
मेरे मन के मधुवन में,

सुषमा के सिर, मुसकाओ,
नव-नव रागों का गौरव,
नव युग का सुख बरसाओ
मैं नव-नव उर का मधु पी,
निज नव ध्वनियों में गाऊँ,
प्राणों के पर छुवाकर,
जीवन-मधु में घुल जाऊँ,

× × ×

तप

[६]

तप रे मधुर-मधुर मन !
विश्व वेदना में तप प्रतिपल,
जग जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ', कोमल,
तप रे विधुर विधुर मन ।
अपने सलज स्वर्ण से पावन,
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,
स्थापित कर जग में अपनापन,
ढल रे ढल आतुर मन,
तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन,
गन्ध हीन तू गन्ध-युक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप मन, मूर्तिवान बन, निर्धन,
गल रे गल निष्ठुर मन !

विस्फारित नयनों से निश्चल, कुछ खोज रहे चल तारक-दल
ज्योतित कर जल का अन्तस्तल;
जिनके लघु दीपों को चंचल, अंचल की ओट किये अविरल,
फिरती लहरें लुक छिप पल-पल
सामने शुक्र की छवि झलमल, पैरती, परी सी जल मे कल ।
रूपहरे कचों में हो ओझल ।
लहरों के घूँघट से झुक-झुक, दशमी का शशि निज तिर्यक् मुख
दिखलाता मुग्धा सा रुक-रुक ।
अब पहुँची चपला बीच धार,
छिप गया चाँदनी का कगार ।
दो बाहों से दूरस्थ तीर, धारा का कृश-कोमल शरीर
आलिंगन करने को अधीर,
अति दूर, क्षितिज पर विटप माल, लगती भ्रू-रेखा-सी अराल,
अपलक नभ नील नयन विशाल ।
माँ के उर पर शिशु-सा समीप, सोया धारा में एक द्वीप
उर्मिल प्रवाह को कर प्रदीप,
वह कौन विहग, क्या विकल कोक, उड़ता हरने निज विरह-शोक !
छाया की कोकी को विलोक ।

पतवार घुमा अब प्रतनु भार
नौका घूमी विपरीत धार ।
डाँडों के चल करतल पसार, भर-भर मुक्ताफल फेन स्फार,
बिखराती जल में तार-हार ।
चाँदी के साँपों सी रलमल, नाचती रश्मियाँ जल में चल
रेखाओं-सी खिंच तरल सरल,
लहरों की लतिकाओं में खिल खिल, सौ-सौ शशि सौ-सौ उडु झिलमिल
फैले फूल जल में फेनिल,

अब उथला सरिता का प्रवाह, लग्गी से ले-ले सहज थाह,
हम बढ़े घाट को सोत्साह ।

ज्यों-ज्यों लगती है नाव पार,
उर में आलोकित शत विचार,

इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति शाश्वत संगम,

शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास
शाश्वत लघु लहरों का विलास,

हे जग जीवन के कर्णधार, चिर जन्म-मरण के आर-पार,
शाश्वत जीवन-नौका विहार ।

मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान ।

सुश्री महादेवी वर्मा

[नीचे सुश्री महादेवी वर्मा की कुछ चुनी हुई कविताएं संकलित हैं। महादेवी आँसू की रहस्यमयी गायिका हैं। उनके गीतों में वेदना, कसक, पीड़ा आदि की मार्मिक अनुभूति है, किन्तु इन सबकी अभिव्यक्ति रहस्य-भावना के आवेष्टित है। इससे उनकी व्यक्ति-अनुभूति भी समष्टि अनुभूति बन गई है। अध्यात्म के पुट ने उनके काव्य को मीरा, कबीर, और सूफी विरह-सन्तों की श्रेणी में ला दिया है। नीचे लिखे गीतों का भाव सौन्दर्य, काव्य वैभव, चिन्तन और कलात्मक गौरव उत्कृष्ट कोटि का है। महादेवी का काव्य "प्रिय-प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्तन रे" की ही अभिव्यक्ति है।]

१. बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण-कण में,
प्रथम जागृति थी जगत् के प्रथम स्पन्दन में,
प्रलय में मेरा पता, पद-चिह्न जीवन में,
शाप हूँ, जो बन गया वरदान बन्धन में,
कूल भी हूँ, कूलहीन प्रवाहिनी भी हूँ।
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छांह वह चल हूँ,
दूर तुमसे हूँ, अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।
आग हूँ जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के
शून्य हूँ, जिसको बिछे हैं पावडे पल के

पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर मे,
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर मे,
नील घन भी हूँ, सुनहली दामिनी भी हूँ।
नाश भी हूँ, मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी, चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी, आघात भी, झंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।

२ विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना मे जन्म करुणा मे मिला आवास,
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात।
जीवन विरह का जलजात।
आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल,
तरल जल-कण से बने घन सा क्षणिक मृदु गात।
जीवन विरह का जलजात।
अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास,
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात।
जीवन विरह का जलजात।
काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार,
पूछता इसकी कथा निश्वास ही मे वात।
जीवन विरह का जलजात।
जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज,
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात।
जीवन विरह का जलजात।

३. मैं नीर भरी दुख की बदली

मैं नीर भरी दुख की बदली ।
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरणी मचली ।
मेरा पग-पग संगीत भरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग झरा,
नभ के नवरंग बुनते दुकूल,
छाया में मलय-बयार पली ।
मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी,
नव जीवन-अंकुर बन निकली ।
पथ को न मलिन करता आना,
पदचिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में,
सुख की सिहरन हो अन्त खिली ।
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही,
उमड़ी कल थी मिट आज चली ।

४ वे मुसकाते फूल, नहीं

वे मुसकाते फूल, नहीं—
जिनको आता है मुरझाना,

वे तारों के दीप नहीं—
जिनको भाता है बुझ जाना

वे नीलम के मेघ, नहीं—
जिनको है घुल जाने की चाह
वह अनन्त ऋतुराज, नहीं—
जिसने देखी जाने की राह।

वे सूने से नयन, नहीं,—
जिनमें बनते आँसू-मोती,
वह प्राणों की सेज, नहीं—
जिसमें बेसुध पीड़ा सोती,

ऐसा तेरा लोक, वेदना,
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद,
जलना जाना नहीं, नहीं—
जिसने जाना मिटने का स्वाद।

क्या अमरों का लोक मिलेगा,
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे,
यह मेरा मिटने का अधिकार।

५. अलि, क्या प्रिय आने वाले हैं ?

मुस्काता संकेत भर
अलि, क्या प्रिय आने वाले
विद्युत के चल स्वर्णपाश में बँध हँस देता रोता ज
अपने मृदु मानस की ज्वाला, गीतों से नहलाता स

दिन निशि को, देती निशि दिन को,
कनक-रजत के मधुप्याले हैं !

मोती बिखराती नूपुर के छिप तारक-परियाँ नर्तन कर;
हिमकण पर आता जाता, मलयानिल परिमल से अंजलि भर;

भ्रान्त पथिक से फिर-फिर आते,
विस्मित पल क्षण मतवाले हैं !

सघन वेदना के तम में, सुधि जाती सुख सोने के कण भर
सुरधनु नव रचतीं निश्वासें, स्मित का इन भीगे अधरों पर

आज आँसुओं के कोषों पर
स्वप्न बने पहरेवाले हैं

नयन श्रवण मय श्रवण नयनमय आज हो रहे कैसी उलझन;
रोम रोम में होता री सखि एक नया उरका-सा स्पन्दन !

पुलकों से भर फूल बन गये,
जितने प्राणों के छाले हैं ।

६. यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो !

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो ।
रजत शंख-घड़ियाल स्वर्ण-वंशी वीणा स्वर,
गये आरती वेला को शत-शत लय से भर,
जब था कल-कण्ठों का मेला,
विहँसे उपल, तिमिर था खेला ।
अब मन्दिर में इष्ट अकेला,
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो ।
चरणों से चिह्नित अलिन्द की भूमि सुनहली,

प्रणत शिरों के अंक लिए चन्दन की दहली,
झरे सुमन बिखरे अक्षत सित,
धूप अर्घ्य नैवेद्य अपरिमित,
तम में सब होंगे अन्तर्हित,
सबकी अर्चित कथा इसी लौ में पलने दो।
पल के मनके फेर पुजारी विश्व सो गया।
प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीच खो गया,
साँसों की समाधि-सा जीवन,
मसि-सागर सा पथ गया बन,
रुका मुखर कण-कण का स्पन्दन,
इस ज्वाला में प्राण-रूप फिर से ढलने दो,
झंझा है दिग्भ्रान्त रात की मूर्छा गहरी,
आज पुजारी बने ज्योति का यह लघु प्रहरी,
जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल,
रेखाओं में भर आभा-जल,
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो।

७ शलभ मैं शापमय वर हूँ

शलभ मैं शापमय वर हूँ।
किसी का दीप निष्ठुर हूँ।
ताज है जलती शिखा,
चिनगारियाँ शृंगारमाला,
ज्वाल अक्षय कोष सी,
अंगार मेरी रंगशाला।
नाश में जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ,

नयन में रह किन्तु जलती
पुतलियाँ आगार होंगी,
प्राण में कैसे बसाऊँ
कठिन अग्नि-समाधि होगी,
फिर कहाँ पालूँ तुझे मैं मृत्यु मन्दिर हूँ ।

हो रहे झरकर दृगों से
अग्नि-कण भी क्षार शीतल,
पिघलते उर से निकल
निश्वास बनते धूम श्यामल,
एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ ।

'कौन आया था न जाने,
स्वप्न में मुझको जगाने,
याद में उन अँगुलियों की
हैं मुझे पर युग बिताने,
रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ ।

शून्य मेरा जन्म था,
अवसान है मुझको सवेरा,
प्राण आकुल के लिए,
संगी मिला केवल अँधेरा,
मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ ।'

८. रूपसि तेरा घन-केश-पाश

रूपसि तेरा घन-केश-पाश !
श्यामल-श्यामल कोमल-कोमल,
लहराता सुरभित केश-पाश !
नभ-गंगा की रजत धार में,

६ क्या पूजा क्या अर्चन रे?

क्या पूजा क्या अर्चन रे?

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे!

मेरी श्वासें करती रहती नित प्रिय का अभिनन्दन रे!

पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जलकण रे!

त पुलकित रोम मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे!

ह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे!

दृग के तारक में नव-उत्पल का उन्मीलन रे!

बने उड़ते जाते हैं, प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे!

। प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्तन रे!

तार सप्तक

[नीचे 'तार सप्तक' के कवियो की सरस, सुबोध और भाव-प्रधा
कविताओं का संकलन प्रस्तुत किया गया है। 'तार सप्तक' के कवियों क
अनुक्रम कुछ दूसरा है, यहाँ थोड़ा बदल दिया है। इन कविताओ मे प्रयोगवा
कविता की नवीन भाव-भूमि, बिम्ब-योजना, नये उपमानो की उपलब्धि
शिल्प-विन्यास की वक्रता और नये स्वस्थ दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने क
क्षमता है। साथ ही कविताओं में कवियों के भिन्न दृष्टिकोण को सूचि
कर सकने की क्षमता भी है। नये भाव-बोध, और शिल्प-सौन्दर्य के आधा
पर पाठक इन कविताओं को सरलता से हृदयंगम कर सकें, इसका ध्या
रखा गया है।

अज्ञेय

१. बदली के बाद

तीन दिन बदली के गये, आज सहसा
खुल-सी गई है दो पहाड़ियो की श्रेणियाँ
और बीच के अबाध अन्तराल मे
शुभ्र, धौत—
मानो स्फुट अधरों के बीच से प्रकृति के
बिखर गया हो कल-हास्य,
एक क्रीड़ा-लोल, भ्रमित लहर-सा—
लांघ कर मानस का शून्यतम
नि:सृत हुआ है द्रुत
तेरे-प्रति मेरे ज्ञान-बोध का प्रकाश—

वेदना की मेखला-सी
जीवनानुभूति की गहराइयों के बीच मेरी विनत कृतज्ञता
पैठ गयी गूँगे प्रणाम-सी

२. भावों की उमस

सहम कर थम से गये हैं बोल बुलबुल के
मुग्ध अनभिज्ञ रह गए हैं बैन पाटल के,

उमस में बेकल, अचल हैं पात चलदल के—
नियति मानों बँध गयी है व्यास में पल के।

लास्य कर कौंधी तड़ित् उस पार बादल के
वेदना के दो उपेक्षित वारि-कण ढलके,

प्रश्न जागा निम्नतर स्तर बेध हृत्तल के—
छा गये कैसे अजाने, सहपथिक कल के ?

३. चरण पर धर चरण

चरण पर धर
सिहरते-से चरण
आज भी मैं इस गुनहले मार्ग पर
पकड़ लेने को पदों से
मृदुल तेरे पद-युगल के अरुण तल की
छाप वह मृदुतर
जिसे क्षण-भर पूर्व ही निज
लोचनों की उछटती-सी बेकली से
मैं चुका हूँ चूम बारम्बार—

कर रहा हूँ, प्रिये, तेरा मैं अनुकरण
मुग्ध, तन्मय
चरण पर धर
सिहरते-से चरण।
पार्श्व मेरा—

किन्तु इसमें क्या कि मेरे साथ चलता कौन है—
जब कि वह है साथ मेरी यन्त्र-चालित देह के—

५. और मैं—मेरा परमतम तत्व वलयित
साथ तेरे प्राण के—
जबकि आत्मा यह अनाहत और अक्षत
चरण–तल की छाप के उस कनक-शतदल
कमल से बिछुडी अकेली दोल पँखुडी में चमकती
लोल जल की बूँद-सी पर-ज्योति गुम्फित
तद्गत और अतिश मौन है।

गिरिजा कुमार माथुर

बुद्ध

आज लौटती आती है पदचाप युगों की,
सदियों पहले का शिव-सुन्दर मूर्तिमान हो
चलता जाता है बोझील इतिहासों पर,
श्वेत हिमालय की लकीर-सा।
प्रतिभासों-से धुंधले बीते वर्ष आरहे,
जिनमें डूबी दिखती
ध्यान-मग्न तसवीर, बोधि-तरु के नीचे की।
जिसे समय का हिम न प्रलय तक गला सकेगा

देश देश में अन्तहीन वह छाया लौटी—
और लौटते आते हैं वे मठ, विहार सब,
कपिलवस्तु के भवनों की वह कांचन माला
जब सागर वन की सीमाएँ लांघ गये थे
कुटियों के सन्देश प्यार के।
महलों का जब स्वप्न अधूरा
पूर्ण हुआ था शीतल, मिट्टी के स्तूपों की छाया में।
वैभव की वे शिलालेख-सी यादें आतीं
एक चाँदनी-भरी रात उस राज-नगर की,
रनिवासों की नंगी बाँहों-सी रंगीनी
वह रेशमी मिठास मिलन के प्रथम दिनों की—
फीकी पड़ती गयी अचानक;
जाने कैसे मिटे नयन-डोरों के बन्धन
मोह-पाश रोमान, प्यार के
गोपा के सोते मुख की तसवीर सलोनी,
गौतम बनने से पहले किस तरह मिटी थी
तीस वर्ष तक रची राज मदिरा की लाली।
आलिंगन में बँधा स्वप्न जब
सिन्धु और आकाश हो गया,
महागमन की जिस वैराग्य भरी वेला में
तप की पहली भोर बनी थी
सेज और सिंहासन की मधु-रात अखोरी।
देख रहे सम्पाति-नयन शिव की सीमा पर
वे शताब्दियों तले दूर देशान्तर फैले
वाल्मीकी-से कच्चे मन्दिर चैत्य, पैगोडा,
जिनसे शीतलता का कन लेने आते थे

रानी, राजपुत्र भिक्षुक बन ।
फैल गयी थी मिट्टी के अन्तर की बाँहें,
सत्य और सुन्दरता के अविरल सघों में
श्याम, ब्रह्म, जापान, चीन, गान्धार, मलय तक,
दीर्घ विदेशों के अशोक-साम्राज्यों ऊपर ।
नहीं रहे वे महावश अब
वे कनिष्क-से, शिलादित्य-से नाम हजारों,
किन्तु तक्षिला, साँची, सारनाथ के मन्दिर,
और जीति-स्तम्भ धर्म के बोल रहे हैं—
जिस सीमा पर पहुँच न पायी, हुईं पराजित,
तुर्क तोड़ने की, क्रूसेडों की तलवारें
वहाँ विश्व-जय हुई प्यार के एक घूँट में

गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

दूर तारा

तीव्र-गति
अति दूर तारा
वह हमारा
शून्य के विस्तार नीले में चला है ।
और नीचे लोग
उसको देखते हैं, नापते हैं गति, उदय औ' अस्त का इतिहास ।
किन्तु इतनी दीर्घ दूरी
[illegible]

नयन आवर्त के सीमित निदर्शन या दर्शन-पान को।
वे नापने चले सिर्फ उसके उदय औ' अस्त की गाथा,
सदा ही ग्रहण का विवरण
किन्तु वह तो चला जाता
व्योम का राही,
भले ही दृष्टि से बाहर रहे—उसका विषय हो बना जाता
और जाने क्यों,
मुझे लगता है कि ऐसा ही अकेला नील तारा,
तीव्र-गति,
जो शून्य में निस्संग;
जिसका पथ विराट्—
वह छिपा प्रत्येक उर में,
प्रति हृदय के कल्मषों के बाद
जैसे बादलों के बाद भी है शून्य नीलाकाश।
उसमें भागता है एक तारा,
जो कि अपने ही प्रगति-पथ का सहारा,
जो कि अपना ही स्वयं बन चला चित्र,
भीतिहीन विराट्-पुत्र
इसलिए प्रत्येक मनु के पुत्र पर विश्वास करना चाहता हूँ

डा० रामविलास शर्मा

१. कार्य-क्षेत्र

धरती के पुत्र की,
होगी कौन जाति, कौन मत, कहो कौन धर्म ?
धूलि-भरा धरती का पुत्र है

जोतता है बोता जो किसान इस धरती को,
मिट्टी का पुतला है,
मिट्टी के चिर संसर्ग में।
धरती के पुत्र के,
कितने मत और धर्म और जातियाँ हैं।
एक रस मटीलेपन में,
छिपी है विभिन्नता, विचित्रता, विषमता विश्व की
रूढ़ियों की, नियमों की, अस्पष्ट विचारों की,
सदियों के पुरातन मृत संस्कारों की,
चिन्हित हैं प्रेतरूप छायाएँ-मटीले मुँह पर।
सुसंस्कृत भूमि में किसान की
धरती के पुत्र की,
जोतती है गहरी दो-चार बार, दस बार
बोता महानिकर वहाँ बीज असन्तोष का—
काटती है नये साल फागुन में फसल जो क्रान्ति की

२. कलियुग

सतयुग, त्रेता, फिर द्वापर औ' कलियुग,
अन्तिम हमारा युग,
निन्दित पुराणों में, शास्त्रों, काव्यों में,
अवांछित आदि युग से यह अधम युग,
सतयुग, त्रेता और द्वापर के कृमि-कीट
विवर्तित हुए जब पिछले युग में,
महामान्य पूर्वजों, महर्षियों, सम्राटों की,
वासना की बूँदें वे,
बढ़ कर बनी आज गम्भीर जन-राशि—

पर सुन दूर किसी नीरस-घाटी से यह क्या बारम्बार
चमक-चमक उठता है ?
विस्मित आँखों में अभिसार
आज दूर से मनमोहन ने मायामय कर डाला
छिटक गया वह पवित्र मूर्ति-धन जो युग-युग से पाला।
पर यह निराकार आधार
वही सीटी बजा रहा है
सुना रहा है, पर बेकार—
यहाँ से छूटी—रुका कहाँ है ?
    गैया चरती है उस पार
    दूर धबीले चिह्न मात्र हैं
जमना लहरें तज बन्ध
सावन बरसे मूसलधार।

भारत भूषण अग्रवाल

अहिंसा

खाना खाकर कमरे में बिस्तर पर लेटा
सोच रहा था मैं मन ही मन "हिटलर बेटा
बड़ा मूर्ख है, जो लड़ता है तुच्छ क्षुद्र मिट्टी के कारण
क्षण-भगुर ही तो है रे ! यह सब वैभव-धन।
अन्त लगेगा हाथ न कुछ, दो दिन का मेला।
लिखूँ एक खत, होजा गान्धी जी का चेला,
वे तुभको बतलायेंगे आत्मा की सत्ता
होगी प्रकट अहिंसा का तब पूर्ण महत्ता।

कुछ भी तो है नहीं मगर दुनिया में अपना।"

× × ×

एक दर से नहीं मिलती "दोरो कहर"

नेमिचन्द्र जैन

१. धूल भरी दोपहरी

धूल भरी दोपहरी
जगती के कण कण में गूँजी आकुल सी स्वर-लहरी
गरम पवन आते-जाते
करुण निराशा भर लाते
एक मूर्च्छना-सी प्राणों पर बेमानी बरसाते
व्याकुलता होती गहरी।
मधुर मनमनी उदासी
एक धूमिल रेखा-सी
छायी है, बहता जाता है पवन मधुर संन्यासी
कौन देश की ठहरी?
आकर यों चल दिये कहाँ को भी जग के चंचल प्रहरी।

२ आगे गहन अँधेरा है।

आगे गहन अँधेरा है मन रुक-रुक जाता है एकाकी,
अब भी है टूटे प्राणों में किस छवि का आकर्षण बाकी?
चाह रहा है अब भी यह पापी दिल पीछे को मुड़ जाना,
एक बार फिर से दो नयनों के नीलम नभ में उड़ जाना,

उभर-उभर आते हैं मन मे, वे पिछले स्वर सम्मोहन के,
गूंज गये थे पल-भर को बस प्रथम प्रहर मे जो जीवन के,
किन्तु अंधेरा है यह, मैं हूँ, मुझको तो है आगे जाना—
जाना ही है पहन लिया है, मैंने मुसाफिरी का बाना।
आज मार्ग मे मेरे अटक ना जाओ यो, ओ सुधि की छलना,
है निस्सीम डगर मेरी मुझको तो सदा अकेले चलना,
इस दुर्भेद्य अंधेरे के उस पार मिलेगा मन का आलम;
रुक न जाय सुधि के बाँधो मे प्राणो की यमुना का सगम,
यो न जाय द्रुत से द्रुततर बहते रहने की साध निरन्तर
मेरे उसके बीच कही रुकने से बढ न जाय यह अन्तर।

उण ही ठाम अरोग, भोजण री मन मे भणै ।
आ तो वात अजोग, राम न भावै राजिया ॥ ३ ॥

३—उस ही वर्तन में भोजन करके, उसे ही तोडने-फोडने का मन में विचार करे तो यह बुरी बात है, हे राजिया ! परमात्मा को यह अच्छी नहीं लगती ।

उपजावै अनुराग, कोयल मन हरखित करै ।
कडवो लागे काग, रसना रा गुण राजिया ॥ ४ ॥

४—हे राजिया ! ये जीभ के ही गुण हैं कि (एक ओर तो) कोयल मन मे अनुराग उत्पन्न करके सबको प्रसन्न करती है और (दूसरी ओर) काग कडवा लगता है ।

ऊँचे गिरवर आग, जळती सौ देखै जगत ।
पण जळती निज पाग, रती न सूझै राजिया ॥ ५ ॥

५—ऊँचे पर्वत पर लगी हुई आग तो सारा संसार देख लेता है किन्तु हे राजिया ! अपनी पगडी में लगी हुई आग तनिक भी नहीं दिखायी देती ।

कारज सरै न कोय, बळ प्राक्रम हीमत बिना ।
हलकार्‌या की होय, रंगा स्याळां राजिया ॥ ६ ॥

६— (निजी) शक्ति, पराक्रम और साहस के बिना कोई भी कार्य पूरा नहीं हो सकता । हे राजिया ! रंगे-सियारों को (दूसरों-द्वारा) हुंकारने (हिम्मत दिलाने) में क्या हो सकता है ?

कानी भोत कुरूप, कस्तूरी, कांटै तुलै ।
साकर बडी सरूप, रोडां तुलै राजिया ॥ ७ ॥

महाकवि सूर्यमल्ल मिश्रण

[निम्नलिखित दोहे चारण-श्रेष्ठ कवि सूर्यमल्ल मिश्रण की 'वीर सतसई' रचना से संकलित हैं। युद्ध-जन्य मारकाट, कोलाहल, वीरों की मुठभेड़ और हुंकार, वीर नारी की उत्सर्ग भावना, वीरों की मरण-लालसा, जन्मभूमि के लिए कट मरने की तीव्र अभिलाषा आदि के साथ-साथ अपूर्व ओजमय वातावरण की सृष्टि इन दोहों की विशेषता है। साथ ही किसी व्यक्ति, देश या काल विशेष के घेरे में नहीं घिरे हैं, अपितु वीर रस सार्वजनिन एवं सार्वकालिक भावों का चित्रण करते हैं। भाषा में एक अद्‌भुत झंकार और शैली में पौरुषेय क्षमता है।]

दोहा

अठै सुजस प्रभुता उठै, अवसर मरिया आय ।
मरणो घरै माझियां, जम नरका ले जाय ॥ १ ॥

१—अवसर पडने पर जो मृत्यु का आलिंगन करते हैं, उन्हें यहाँ (पृथ्वी पर) तो यश-प्राप्ति होती है और वहाँ (स्वर्ग में) प्रभुता मिलती है किन्तु जो घर मे मरते हैं उन्हें यम नरक मे ले जाता है।

आज घरै सासू कहै, हरख अचाणक काय ।
बहू वळेवा हूलसै, पूत मरेवा जाय ॥ २ ॥

२ घर मे आकर सास कहती है कि आज यह अचानक हर्ष क्यों मनाया जा रहा है ? (पर उसे ज्ञात हुआ कि) आज पुत्रवधु तो सती होने के लिए उल्लसित हो रही है और पुत्र जन्मभूमि पर प्राण न्यौछावर करने जा रहा है।

जिण वन भूल न जावता, गैद गवय गिडराज ।
तिण वन जंबुक ताखड़ा, ऊधम मंडै आज ॥ ७ ॥

७—जिस वन में गयन्द (हाथी) गवय (गैंडे) और गिडराज (शूकर-राज) भूल करके भी नही जाते थे, उसी मे आज सियाल (जंबुक) मुस्तंद हो कर ऊधम मचा रहे हैं।

(सन् ५७ की क्रान्तिकालीन परिस्थितियों की ओर मार्मिक संकेत है। वीरों की भूमि में अंग्रेजों की धमाचौकड़ी गीदड़ों के समान ही थी)।

टोटै सरका भीतड़ा, घातै ऊपर घास ।
वारीजे भड़-भूपड़ां, अघपतियां आवास ॥ ८ ॥

८—टोटे के कारण सरकण्डो से बनी भीत पर घास-फूस डाल कर बनाये हुये वीरों के झोंपड़ो पर अधिपतियो के महल न्योछावर कर दिये जा सकते हैं।

डोहै गिड वन वाड़ियां, द्रह ऊंडा गज दीह ।
सीहण नेह सकैकतो, सहल भुलाणो सीह ॥ ९ ॥

९—गिड़ (शूकर) वन, और वाड़ियो का ध्वस कर रहे हैं और गजराज गहरे जलाशयो (द्रह) को गँदला कर रहे हैं। इससे प्रतीत होता है कि सिहनी के स्नेह मे पड़ कर सिंह शायद सैर (सहल) करना भूल गया है। (यह भी तत्कालीन राजनीतिक कायरता के प्रति व्यग्य है)।

घन ले वीरा धाड़वी, अब कीजै न अबेर ।
एथ धणी जे आवसी, सौ रो विकसी सेर ॥ १० ॥

१०—वीर पत्नी की उक्ति डाकू से :—

हे भाई डाकू! घन लूट कर अब देरी मत कर। क्योंकि यदि यहाँ का

धणी (स्वामी) घर गया तो भी रुपये का सेर बिकेगा अर्थात् यह सौदा मुझे महँगा पड़ेगा, मेरे प्राण संकट में पड़ जायेंगे।

> नहँ पाड़ौस कायर नरां, हेली वास सुहाय।
> बलिहारी जिण देस रै, माथा मोल बिकाय ॥ ११ ॥

११—वीर पत्नी की उक्ति है—

हे सखी! कायर पुरुषों के पड़ौस में बसना भी मुझे नहीं सुहाता। मैं तो उसी देश पर बलिहारी हूँ जहाँ सिर मोल बिकते हैं अर्थात् जहाँ वीर सिरों का सौदा करते हैं।

> नागण जाया चीटला, सीहण जाया साव।
> राणी जाया नहँ रवै, सो कुळ-वाट सुभाव ॥ १२ ॥

१२—नागिन से पैदा सँपोले, सिंहों के शावक और रानियों से पैदा हुये वीरों का तो यही स्वभाव और कुल-मार्ग है कि वे किसी के रोके हुये नहीं रुकते हैं।

> नाग द्रमंका की पड़ै, नागण धर मचकाय।
> दस रा भोगण हार जे, ग्राज भिड़ाणा ग्राय ॥ १३ ॥

१३—शेषनाग से नागिन पूछती है कि हे नाग! ये धमाके किसलिए हो रहे हैं, तो शेषनाग उत्तर देते हैं कि हे नागिन! पृथ्वी (धरा) लचक रही है, क्योंकि ग्राज इसको भोगने वाले वीर एक दूसरे से आ भिड़े हैं।

> निधड़क सूतो केहरी, तो भी विमुहा पाव।
> गज गैंडा धीर न धरैं, वज्र पड़ै बधबाव ॥ १४ ॥

१४—नाहर गहरी नींद में निधड़क होकर सोया हुआ है तो भी हाथी और गैंडे उसके भय से धैर्य धारण नहीं करते और उसके पाँव उल्टे (पीछे)

ही पड़ते हैं। व्याघ्र-वायु (नाहर की गन्ध) कया आ रही, मानो उन
पड़ रहा है।

पग पाछा छाती धड़क, काळो पीळो दीह।
नैण मिचै साम्हो सुणे, कवण हकालै सीह॥ १५॥

१५—जिस सिंह को सामने आता सुनकर ही पैर पीछे पड़ने
छाती धड़कने लग जाती है, काला-पीला दिखाई देने लगता है (आँखें
अंधेरा छा जाता है) और आँखें मिच जाती है, ऐसे सिंह को ललक
साहस कौन कर सकता है?

पर दळ पाड़े घूमतां, नाह जुहारे आय।
राणी इसड़ा रावतां, हाथां नीम बटाय॥ १६॥

१६—जो धावो से छक कर झूमते हुये शत्रुओं के दल का सह
है और फिर अपने स्वामी को आकर जुहार (प्रणाम) करते है, ऐसे
के लिए तो उनके घावो पर लगाने के लिए हे रानी! अपने हाथों
बाँटो।

बाज कुमैत विसासतौ, धीमैं वेग धपाय।
वाभी तोरण बींद जिम, जोवी देवर जाय॥ १७॥

१७—देवरानी जेठानी से कह रही है—हे भाभी, अपने दे
देखो! अपने कुमैत घोड़े को धीरज बँधाते हुए और धीमी चाल
करता हुआ इस प्रकार (युद्ध की ओर) चल रहा है जैसे बींद तोरण
रहा हो अर्थात् युद्ध में भी वह विवाहोत्सव की तरह आनन्द से जा रह

बाप वसाया वैर जे, तेवे निडर निराट।
बेटा सिर रा गाहकी, बळिया जोवै वाट॥ १८॥

१८—सिर के ग्राहक बेटे अपने बाप द्वारा बसाये गये वैर को
और निःशंक होकर ले रहे हैं, किन्तु कुछ लोग (जो कायर हैं) अब
प्रतीक्षा कर रहे हैं।

विरण मरियाँ विरण जीतियाँ, धणी आविया धाम।
पग पग चूडी पाछटूं, जे रावन री जात॥ १६॥

१६—वीर-पत्नी की उक्ति पति से—

हे पति! बिना मृत्यु को प्राप्त हुये या बिना विजय प्राप्त किये जो आप घर आये तो यदि मैं वीर-पुत्री हूँ तो आपके मार्ग में पग-पग पर अपनी चूड़ियों के टुकड़े करके डाल दूँगी।

विण माथं वाढं दळाँ, पोढं करज उतार।
तिण सूराँ रो नाम ले, भड बाँधं तरवार॥ २०॥

२०—जो वीर बिना सिर के ही सेनाओं को काट डालता है और धरती का ऋण चुकाकर सो जाता है, ऐसे शूरवीर का नाम ले लेकर योद्धा युद्ध के लिए तलवार बाँधते हैं।

भाभी हूँ डोढी खडी, लीधाँ खेटक रूक।
थे मनुहारो पाहुणाँ, मेडी भाल बदूक॥ २१॥

२१—ननद की भाभी के प्रति या देवरानी की जेठानी के प्रति उक्ति—

हे भाभी! (शत्रु आ गये हैं इसलिए) मैं तो ड्योढी पर तलवार और ढाल लेकर खडी होती हूँ और तुम बन्दूक लेकर मेडी पर से मेहमानों (शत्रुओं) की मनुहार करो।

नीडं पलटाणा निडज, नीडं धरा नाळेर।
नाह! इसा घर नूतणाँ, आप घरा जळ देर॥ २२॥

२२—जहाँ पति तो बारी-बारी से कसे हुए घोडे पलटता है और उसकी पत्नी के पास सती होने के लिए नारियल रखा हुआ है, हे स्वामी! यदि ऐसे घर को युद्ध के लिए न्यौता देना हो तो पहिले अपने घर को जलाञ्जलि दे देनी चाहिये।

ही पड़ते हैं। व्याघ्र-वायु (नाहर की गन्ध) चला आ रही, मानो उन पर वज्र पड़ रहा है।

पग पाछा छाती धड़क, काळो पीळो दीह।
नैंण मिचै साम्हो सुणै, कवण हकालै सीह ॥ १५ ॥

१५—जिस सिंह को सामने आता सुनकर ही पैर पीछे पड़ने लगते हैं, छाती धड़कने लग जाती है, काला-पीला दिखाई देने लगता है (आँखों के आगे अंधेरा छा जाता है) और आँखें मिच जाती हैं, ऐसे सिंह को ललकारने का साहस कौन कर सकता है ?

पर दळ पाड़ै घूमतां, नाह जुहारै आय।
राणी इसड़ा रावतां, हाथां नीम वटाय ॥ १६ ॥

१६—जो घावों से छक कर झूमते हुये शत्रुओं के दल का संहार करते है और फिर अपने स्वामी को आकर जुहार (प्रणाम) करते है, ऐसे शूरवीरों के लिए तो उनके घावो पर लगाने के लिए हे रानी ! अपने हाथों से नीम बाँटो।

बाज कुमैत विलासतो, धीमै वेग धपाय।
बाभी तोरण बींद जिम, जोवो देवर जाय ॥ १७ ॥

१७—देवरानी जेठानी से कह रही है—हे भाभी, अपने देवर को देखो ! अपने कुमैत घोडे को धीरज बँधाते हुए और धीमी चाल से तृप्त करता हुआ इस प्रकार (युद्ध की ओर) चल रहा है जैसे बींद तोरण पर जा रहा हो अर्थात् युद्ध मे भी वह विवाहोत्सव की तरह आनन्द से जा रहा है।

बाप वसाया वैर जे, लेवे निडर निराट।
बेटा सिर रा गाहकी, बळिया जोवै वाट ॥ १८ ॥

१८—सिर के ग्राहक बेटे अपने बाप द्वारा बसाये गये बैर को निर्भय और निःशंक होकर ले रहे है, किन्तु कुछ लोग (जो कायर प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सतसई दोहामयी, मीसण सूरजमाल ।
जपै भड़भागी जठै, सुणै कायरां साल ॥ २७ ॥

२७—इस दोहेमयी 'सतसई' का सूर्यमल्ल मिश्रण उच्चारण करता है जो वीर-भक्षिणी है और जिसे सुनकर कायरों के दिल में साल उठता है।

साथण ढोल सुहावणो, देणो मो सह दाह ।
उरसां खेती बीज धर, रजवट उलटी राह ॥ २८ ॥

२८—सती होने वाली नारी की उक्ति—

हे सखी ! मेरे सती होने समय सुहावना ढोल बजवाना क्योंकि क्षात्र-धर्म की यही उलटी रीति है कि इसका (क्षत्रियत्व का) बीज तो पृथ्वी में बोया जाता है और खेती स्वर्ग में फलती है।

सीह न बाजो ठाकुरां, दीन गुजारो दीह ।
हाथळ पाड़ै हाथियां, सो भड़ बाजै सीह ॥ २९ ॥

२९—हे सरदारो ! अपने आपको सिंह न कहलाओ क्योंकि तुम तो दीन होकर समय गुजार रहे हो। सिंह तो वह है जो अपने पंजे के बल से हाथियों को ढहा देता है।

हूँ बलिहारी राणियां, जाया वंस छत्तीस ।
चून सलूणो सेर ले, मोल समप्पै सीस ॥ ३० ॥

३०—कवि कहता है कि मैं क्षत्रियों के छत्तीस वंश उत्पन्न करने वाली रानियों पर न्यौछावर हूँ कि जिनके वीर-पुत्र नमक मिला सेर भर आटा लेकर बदले में अपना सिर समर्पित कर देते हैं।

या घर खेती ऊजळी, रजपूतां कुळ-राह ।
पडणो धव लारां चितां, चढ़णो धारां याह ।। २३ ।।

२३—इनका यही उज्ज्वल गृह-व्यवसाय है और यही राजपूतों का कुल-मार्ग है। पति का युद्ध मे तलवार चला कर कट जाना और पत्नी का पति के साथ चिता पर चढ़ कर जल जाना।

यो गहणो, यो वेस अब, कीजे धारण कंत ।
हूँ जोगण किण काम री, चूडौ खरच मिटंत ।। २४ ।।

२४—कायर पति के प्रति पत्नी की उक्ति—

हे कन्त ! अब मेरा यह वेश और यह गहना आप धारण कीजिये। मैं तो योगिनी होकर चली, अब आपके किस काम की ? अच्छा ही हुआ आपका भी चूड़े आदि का खर्चा मिट गया। (अर्थात् कायर पति के साथ वह नही रह सकती)।

रण खेती रजपूत री, बीर न भूलै बाळ ।
बारह बरसां बाप रौ, लहै बैर लंकाळ ।। २५ ।।

२५—राजपूत की खेती, उसका व्यवसाय तो युद्ध है, इस बात को वीर बालक तक नहीं भूलता। वह सिंह १२ वर्ष की अवस्था में भी अपने बाप का बदला लेता है। *(अथवा १२ वर्ष बाद भी बदला ले लेता है)*

रुण्ड हुआ जीवै जिकै, सदा न हेरे साथ ।
सीहां रै गळ सांकळां, वे भड़ घालै हाथ ।। २६ ।।

२६—जो वीर मस्तक को हथेली पर लिये फिरते हैं और रुण्ड के समान जीते हैं तथा जो कभी किसी का साथ नहीं ढूँढ़ते, ऐसे वीर ही सिंहों के गले में, सांकल डालने को हाथ लगा सकते हैं।

वेलां केलां नाळ मचपळा चढता माळा ॥
जोड़ जंगला सेन, छीब छवि चोखी घणी ।
गगण धरण रै गाण, सजै भँवरा सारंगी ॥
छीळर ताळ तळाव, भील पालर जळ सेवै ।
नाळा निरमळ नीर निवाण: भाज्यो वैवै ॥
मनड़ा खोलै मोर पपीहा बोलै प्यारा ।
गीरै चरचर्‌या गीज बजावै बीन नगारा ॥
दादर भादर निडर कूदता-फिरता गावै ।
झिगुर जोड़ बतार, सतारी तार सजावै ॥
जाणै तीनों लोक मोद भर सुखमा छीनी ।
बीकाणै री भोम, मळावण बरसा दीनी ॥
रिळमिळ फूलां भोय, फूल महकार उडावै ।
मीठो भोजन जोम जियां मेंगनो गुण गावै ॥
धुरै पळायण जोर, झिमोरी बादळ झुग्ता ।
झुडता टीबा भोय, भोम सूं बाना बरना ॥
धनख बाण नभ ताण बादळा हरख बधावै ।
पळकै-खळकै खाळ, बीज दिन-रैण बणावै ॥
तावड़-छाया तोड़ जोड़ भट आळ बणावै ।
धरम-बैन धर बणा, बीज गेला पैरावै ॥

बीकाणी-सावण

यह ईश्वर की कृपा है कि बीकानेर एक अलग ही तरह का देश है, [illegible] वर्षा ऋतु में यह प्रकृति का अत्यधिक प्रिय बन जाता है। हरियाली छा[illegible]ई है और सुहावनी धरा मन को अच्छी लग रही है। इसे देख कर मुनियों [illegible]र देवताओं का भी मन मोहित हो जाता है, फिर मनुष्यों की तो बात ही [illegible] चारों ओर हरियाली की दीवार खिंच रही है मानो [illegible]

श्री नानूराम संस्कर्ता

[यहाँ श्री संस्कर्ता के प्रकृति-काव्य 'कळायण' में से 'बीकाणी-सावण' शीर्षक का कुछ अंश उद्धृत है। बीकानेर की मरुस्थली में जिस वर्ष काली-घटा उमड़ती है, सावण सुरंगा हो जाता है। हरियाली की रेखा ऐसी खिंच जाती है मानों ब्रह्मा रूपी माली ने हीरे-पन्नों की दीवार बना दी है। टीलों पर झूलते हुये बादल धरा से बात करते-से लगते हैं। कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का सुरम्य चित्र खींचा है। आंचलिक शब्दों के प्रयोग ने चित्र को गहरा रंग दिया है। उत्कृष्ट कोटि की उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ काव्य को सरस बना रही हैं। कीट-पतंगों और पक्षियों का आनन्द-गीत भी सुनायी दे रहा है।]

बीकाणी-सावण

आ मालक री मैर, देस बीकाणो न्यारो ।
पर बरसा में बणै, घणो पर करतो प्यारो ।।
हरयाळी छा रही, भा रही भोमी सोणी ।
मिनखाँ किसी मजाल, मुन्याँ देवाँ मन मोणी ।।
च्यारूँ दिसां दिवाल दिखावै है हरियाळी ।
हीरा पन्ना भीत बणायो, ब्रह्मा माळी ।।
धर पर सोवै लाल ममोल्याँ चून्याँ जिसडी ।
जाणूँ भोमी हार, हिये पहर्‌याँ हँसतडी ।।
अ भा बिरछ अनेक अेक सूँ अेक रंगीला ।
तासूँ तार तमाम, फूल फळ फबै फबीला ।।
कठै पानड़ा प्रेम, कठै बेला रो बासो ।
कठैक भाड्यां भुँड, भुड्यो भड खीचड खासो ।।
काचर काकडियाँ मतीरा, मूण-पठाळाँ ।

कन्हैयालाल सेठिया

[नीचे श्री सेठिया के 'मींझर' नामक राजस्थानी काव्य संग्रह में से
ठ कविताएं संकलित हैं। इन कविताओं में कवि ने नवीन विषयों को
राजस्थानी में मुखरित किया है। 'जिनगानी' शीर्षक से जिन्दगी के श्रमशील,
कण्टकाकीर्ण पथ को मार्मिकता से अभिव्यंजित किया है। 'कुण जमीन रो
णी' कविता में कृषक की शोषित-अवस्था के प्रति कवि ने एक चुनौती भरा
श्न उठाया है। और 'मिनख' कविता में मनुष्य की कर्मठ शक्ति के प्रति
श्वास व्यक्त किया है। भावों में नवीनता, समाजवादी स्वर के साथ गीतों
ी संगीतात्मकता का अद्भुत सामंजस्य है]

१. जिनगानी

होठां पर मुळकै जिनगानी—
आंसू में टळकै जिनगानी।
जीवण री बळती जोत तळै
नित मरणूं टळकै जिनगानी।

मैं कांटा फूल कबीलै मे
निस सूसै बैठी लीलै मे
मजला सूं पैली गळै मिलै
सुख दुख री हगर्या मराजाणी
होठां पर मुळकै जिनगानी....

पौ फाटी दिवलो बळ बुझग्यो
नाळ बीज गयो जद रूंख उग्यो,

ने हीरे-पन्नों की भीत बना दी हो। पृथ्वी पर छोटी-छोटी लाल वीर बहूटियाँ सुशोभित हैं, मानों पृथ्वी ने बहुत सुन्दर हार हिये पर धारण कर रखा हो। एक-से-एक रंगीले वृक्ष खड़े हैं जो सारे के सारे फल और फूलों से सुशोभित हैं। कहीं पर पत्ते छाये हुए हैं तो कहीं पर बेलों का निवास हो रहा है. और कहीं झाड़ियों के झुण्ड पर पर्याप्त मात्रा में खीचड (झाड़ी पर बेरों से वालों फूलों) भुके हुए है। काचर, काकड़ियाँ, मतीरे, मूग-पट्टा (का मतारा) इत्यादि की बेलें चपलता से नालों के ऊपर चढ़नी ज तालाब, जंगल, खेत इत्यादि की छवि बहुत सुन्दर हो रही है और गायन के लिए पृथ्वी भीरों रूपी सारंगी सजा रही है। छीलर (छोटे ताल, तालाब और झीलें पालर पानी (वर्षा के पानी) का सेवन और नालों में स्वच्छ जल भरा है जो जलाशयों की ओर भाग क है। मोर अपने मन को खोल रहे हैं (प्रसन्न हो रहे हैं), पक्षी प्रिय व रहे है। चरचरयाँ गीत प्रारम्भ कर रही हैं और बिजली नँगाड़े बजा बहादुर मेंढ़क निडर होकर कूदते-फिरते गा रहे हैं और झिंगुर पक्तिन सितार के तार बजा रहे हैं। ऐसा लग रहा है मानों तीनों लोक को छीन कर 'वळायण' ने बीकानेर की भूमि पर बरसा दिया है घुलमिलकर के पवन सौरभ उड़ा रही है जैसे कोई भिखारी मी करके दाता के गुणगान कर रहा हो।

काली घटा उमड रही है, लोर (हलके बादल) हिलोर ले रा भारी बादल नीचे को उतर रहे हैं, वे टीलों की ओर मुड़ रहे हैं, ऐ होता है मानो पृथ्वी से बात करते चल रहे हैं। आकाश अपने इन्द्र तान कर बालकों का हर्ष बढ़ा रहा है, नाले खल-खलाते बह रहे हैं, रात्रि को दिन बना देती है। कालीघटा धूप और छाया को तोड़ कर f स्थान-स्थान पर जोड़ती हुई एक प्रकार का जाल-सा तैयार कर रही पृथ्वी को धर्म-बहिन बना कर उसे बिजली के गहने पहना रही है।

करणी सूं पैली मिट जाणी,
आ करणी आळी कहाणी
होठां पर मुळकै जिनगाणी ...

दिन ऊगतो मार अन्धेरै नै
दिन मरग्यो जा'र अन्धेरै मैं
आ जीत हार रै बळदां मिस
नित चालै तेली री घाणी
होठां पर मुळकै जिनगानी ।
आंसू में ढळकै जिनगानी ।

१. जिनगानी

होठों पर जिन्दगी मुस्कराती है, आंसुओं में जिन्दगी ढली जाती है। जीवन की जगती हुई ज्योति के नीचे नित्य ही मृत्यु की ओर जिन्दगी ढुलक रही है।

फूलों के पत्तों में कांटे होते है, हरियाली में बैठी हुई प्यास सूख रही है। मंजिल पर पहुँचने से पहले जिन्दगी को सुख-दुख की पगडण्डियों से गले मिलना पड़ता है। ऐसे जिन्दगी होठों पर मुस्करा रही है, आंसुओं में ढलती जा रही है।

ऊषा काल होते ही दीपक जलकर बुझ गया। बीज मिट्टी में मिल कर गल गया तब जाकर वही वृक्ष उगा। कर्म का फल आने से पहले ही उसे मिटना पड़ेगा, यह बात कर्म करने वाले को कहाँ ज्ञात थी। इस तरह जिन्दगी होठों पर मुस्करा रही है, आंसुओं में ढल रही है।

अन्धकार को नष्ट करके दिन प्रसन्न हुआ, किन्तु उसी अन्धकार में जाकर स्वयं दिन को समाप्त होना पड़ा। इस तरह हार और जीत के बैलों के बहाने यह (जीवन) तेली की सी घाणी चल रही है। होठों पर जिन्दगी मुस्कराती है, आंसुओं में जिन्दगी ढली जाती है।

२. कुण जमीन रो धणी ?

कुण जमीन रो धणी ?

हाड मास चाम गाळ
खेत मे पसेव सीच,
लू लपट ठड मेह
सैं सकै दाँत भीच ।

फाड चौक कर करै जौतणी' र बोवणी
वो जमीन रो धणी' क ओ जमीन रो धणी ?

मद पिवै उडै मजा
करै जुलम सैंकडी,
ठग बण्या ठाकरा
हिद हुई हैंकडी,

रात दिन रैत नै लूंटणी' र खावणी,
ओ जमीन रो धणी' क वो जमीन रो धणी ?

हळ जुप्यो जद विवधा
फूस पान टापरो,
पेट काट बीज री
करी जुगत बापडो,

पडो छाट कयो हरख रामजी भली सुणी,
ओ जमीन रो धणी' क वो जमीन रो धणी ?

खड़ी फसल करा कुड़क
भरै ब्याज बाणियूं,
बळद बैच ब्याज कै
ब्याज नै उघाणियूं,

राज सीर चीर कै के करै'र करसणी,
ओ जमीन रो धणी', क वो जमीन रो धणी ?

२. कुण जमीन रो धणी

इस धरती का स्वामी कौन है ? जो अपनी हड्डी,मांस और चमडी को गला कर अपने पसीने को खेत में सींचता है, जो लू की लपटें, शीत और वर्षा सबको दात भीच कर सहन करता है और इस प्रकार खेत को चीर कर जो जोतनी और बोवनी करता है, वह इस धरती का स्वामी है या यह (कोई दूसरा) है ?

जो मदिरा पीकर मजे-विलास करते है, सैंकड़ो प्रकार के अत्याचार करते है, जो ठाकुर ठग बने हुए है और जिनकी अक्खडता सीमा पार कर चुकी है, जो रात दिन अपनी प्रजा को लूटते और खाते है, इस धरती के मालिक ये है या वह (किसान) ।

जैसे ही खेत में हल जोता, उसके घर के ऊपर का फूस-पता तक बिक गया, जिस बेचारे ने अपने पेट को भी काट कर किसी तरह बोने के लिए बीज का जुगाड किया है और जैसे ही वर्षा की बूंद पडी कि प्रसन्न होकर कहा 'भगवान ने भला किया' बताइयें तो जमीन का धणी यह (किसान) है या वह (और कोई) ।

खेत मे खडी हुई फसल को नीलाम करवा कर बनिया ब्याज भर लेता है और किसान के बैल को बिकवा कर ब्याज के ब्याज को भी उगा लेता है; इस तरह राजा के साझे से चोरी होती हैं, भला इस मे क्या कृषि

ऐसी दशा मे इस जमीन का असली धणी कौन, किसान या ठाकुर और
वे ?

३. मिनख

आ पगा हिमाळो कोकरियो
हाथा नै समदर एक चळू,
आख्या नै काटा फूल बण्या
आं सगळियां स्यूं कियां टळू ।

अै सूरज चांद फिरै फिरता
कुण बैठ अडीके सागां नै ।
आभा रो डोळ न ढाब सकै
नीचे स्यूं उठती रागा नै ।

मैं थमू जठै ही मजलां है
मैं खोज माड द्यूं बै गैला,
मैं मुण्या अणमुण्या कर चालूं,
नित मौत मिजाजण रा हेला,

युग जलम्यो म्हारी होड करै
धरती पर कोई जोड नही,
मैं मिनख जठै न पूग सकूं,
बा रची रामजी ठौड नही ।

३. मिनख

मेरे इन पैरो के लिए हिमालय तो कंकर के समान तुच्छ है, मेरे हाथो के
[illegible] समुद्र एक चुल्लू भर पानी के समान है, मेरी आंखो के लिए सारे ही कांटे
[illegible] के समान हो जाते है, भला मै इन सारियो मे कैसे बच सकता हूँ ?

आकाश में ये सूर्य और चन्द्रमा नित्य घूमते रहते है। कौन किसके साथ के लिए प्रतीक्षा मे बैठा रहता है ? फिर नीचे से, इस पृथ्वी पर से उठती हुई जीवन-राग को रोक रखने लायक आकाश की क्षमता नहीं है।

मैं (मनुष्य) जहाँ जाकर रुकूँ वहीं मेरा गंतव्य-स्थान (मंजिल) है और जिधर होकर मैं अपने पैरो के चिह्न बना देता हूँ वे ही मार्ग हो जाते हैं। मैं मृत्यु से भी नही डरता, उस गर्विणी की आवाज को तो मैं सुनी-अनसुनी करके चलता रहता हूँ।

इस पृथ्वी पर ऐसा कोई प्रतिद्वन्द्वी पैदा नही हुआ जो मेरी समता कर सकता हो और भगवान ने इस पृथ्वी पर ऐसे किसी स्थान की रचना नहीं कि जहाँ पर मुझ मानव की पहुँच न हो सके।
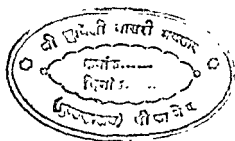
शब्द-कोष

१—सूरदास

(१) विरद = यश, कीर्ति। (२) रांकल = गरीब, रंक। (३) निमतरिहौं = उद्धार पाऊँगा। (४) जठर = पेट। (५) लावत = लिपटाते हैं। (६) दसन = दाँत। (७) वासनी = टोकरी। (८) पटतर = समान। (९) राजीव......कुसेसय = कमलों की जाति। (१०) सुरभिन = गाएँ। (११) नेति = दही विलोने की रस्सी। (१२) कचुकी = चोली। (१३) सनु = सुख। (१४) व्याल = सर्प। (१५) चखन = नेत्रों से। (१६) जलमुन = वमन। (१७) सारंग = मृग। (१८) हारिल = एक पक्षी जो अपने पंजों में लकड़ी लिये रहता है। (१९) सौनुख = सन्मुख। (२०) जक = रट, धुन। (२१) हंस-सुता = यमुना।

२—तुलसीदास

(१) रोचना = रोली, गोरोचन। (२) रूरे = सुन्दर। (३) पन = प्रण। (४) जयौ = विजयी हुआ। (५) कुठार-पानि = परशुराम। (६) त्रास = भय। (७) मार्षे = क्रुद्ध हुए। (८) अनखौंही = कड़वी। (९) पिनाक = धनुष। (१०) सरीकता = साझा। (११) वल्कल = वृक्ष की छाल। (१२) तून = तरकश। (१३) रतिपति = कामदेव। (१४) सहरी = मछली। (१५) तरनी = नाव। (१६) बाद = बहस, विवाद। (१७) बसन = वस्त्र। (१८) तमीचर = राक्षस। (१९) खोरि-खोरि = गली-गली। (२०) कौतुकी = विनोदशील। (२१) तूर = तुरही। (२२) वालधी = पूँछ। (२३) दवारि = दावाग्नि। (२४) रसना = जीभ। (२५) व्योम-बीथिका = आकाश मार्ग। (२६) धूमकेतु = पुच्छलतारा। (२७) सुरेश-चाप = इन्द्र धनुष। (२८) हमानु-सरि = आग की नदी। (२९) निकेत = घर। (३०) महिष = भैंस। (३१) वृषभ = बैल। (३२) जातुधानि = राक्षसी। (३३) मज्जु = वज्र। (३४) पराउनो = भगदड़। (३५) परानि = प्राण। (३६) पनिहैं = रहा

करें। (३७) मदोवै = मन्दोदरी। (३८) राजरोग = यक्ष्मा। (३९) रांक = रंक, दरिद्र। (४०) बिसोक = शोक रहित। (४१) श्रांत = चैन। (४२) मनाक = थोड़ा, अल्प। (४३) रजाय = आज्ञा। (४४) रसायनी = रसायन-शास्त्र का ज्ञाता। (४५) समीर-सून = पवनपुत्र, हनुमान। (४६) सरवाक = सम्पुट। (४७) बुट = जड़ी-बूटी। (४८) पुटपाक = वैद्यक-क्रिया-विशेष। (४९) जात-रूप = सोना। (५०) मृगाङ्क = एक प्रकार का वैद्यक रसायन जो स्वर्ण और रत्नादि से बनता है और क्षय रोग में उत्तम माना जाता है। (५१) कठेरी सी = कठोर-सी। (५२) तीस = नष्ट। (५३) हथेरी-सी = छोटी सी, हथेली के समान। (५४) पीनता = पुष्टता। (५५) मेरिये = मेरी ही। (५६) चार = जासूस। (५७) चेटकी = जादूगर। (५८) अहन = दिन। (५९) अयानो = अजानी। (६०) पोच = क्षुद्र, हीन।

३—देवदत्त 'देव'

(१) नरनाह = राजा। (२) पारथ के रथ = अर्जुन के रथ पर, महाभारत में, श्री कृष्ण अर्जुन के सारथी बने थे। (३) आंकुस = लोहे का कांटा जिससे हाथी नियन्त्रण में रखा जाता है। आकुश....उर = भक्त प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को बड़े कष्ट दिये थे। भक्त की पुकार पर भगवान ने नृसिंहावतार धारण कर हिरण्यकश्यप का हृदय विदीर्ण कर दिया था। (४) हुते = थे। (५) विदुर की भाजी = विदुर धृतराष्ट्र और पाण्डु के छोटे भाई थे और अम्बिका दासी के पुत्र थे। ये श्री कृष्ण के बड़े भक्त थे। प्रेमवश श्री कृष्ण एक बार इनके घर पर केले के छिलके खा गये। (६) भीलनी के बेर = राम-अवतार रूप में सीता हरण के पश्चात् श्री राम और लक्ष्मण जब जंगल में भटक रहे थे तो शबरी नामक भीलनी ने इन्हें जूठे बेर ही खिला दिये जिन्हें भगवान बड़े प्रेम से खा गये। (७) विप्र के चाउर = सुदामा और श्रीकृष्ण की मैत्री प्रसिद्ध है। सुदामा द्वारा लायी गयी भेंट के कच्चे चावलों ो खाकर उसे दो लोक का राज्य दे दिया था। (८) द्रौपदी के चीर द्वारा द्यूत में हार जाने पर द्रौपदी को दुर्योधन ने भरी सभा में नंगी था। उसने आर्तस्वर से भगवान को पुकारा और श्री कृष्ण ने

द्रौपदी का चीर इतना बढ़ा दिया कि दुःशासन जैसा वीर भी खींचते-खींचते थक गया, किन्तु चीर का अन्त नहीं आया। उनई = उमड़ी। (१०) दंतूलन = अंकुरयुक्त। (दो दलों वाली (११) बौरनि = बगराई हुई। (१२) किंसु = पलाश। (१३) कुरौं = एक पौधा। (१४) किरवार = अमलतास (१५) तर्चा = तपा हुआ। (१६) झिगुला = छोटे बच्चों को पहनाने का एक ढीला वस्त्र। (१७) केकी = मोर। (१८) उतारो ... ...राइ नोन = छोटे बच्चों को जब 'नजर' लग जाती है तो राई और नमक लेकर उतारा करते हैं जिससे 'नजर' का कष्ट दूर हो जाता है। (१९) मृगमद = कस्तूरी। (२०) चोवा = उबटन। (२१) मयतूल = रेशमी कपड़ा। (२२) खौरि = गिड़कें, 'गलियाँ'। (२३) किरचें = टुकड़े। (२४) बर्द-बर्द = बढ़-बढ़ाते है। (२५) बरनत = बखानते है। (२६) दई-दई = भगवान को पुकारना। (२७) चकि-चकि = चकित होकर। (२८) कोये = आँखों के किनारे। (२९) भगोहे = भगवा। (३०) फटिक-माल = स्फटिक की माला।

४—पद्माकर

(१) जाचकजरूरे तें = कठिनाई में पड़ा याचक। (२) पन्नग-फनान = सर्प के फणों से। (३) फल चारि = धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। (४) उमाह = उमग। (५) भुजङ्ग = साँप। (६) कूरम = कछुवा। (७) कोल = शूकर। (८) छवी = शोभा। (९) रजत-पहार = हिमालय। (१०) फरद, रोजनाम, खाता, बही = हिसाब रखने की बहियों के नाम। (११) चिचनु = दिनदिन। (१२) असम-लोचन = अन्यों की तुलना में एक नेत्र अधिक होने से विषम नेत्र। (१३) मलिद = भौंरे। (१४) नसाली = नशीली। (१५) दादुर = मेंढक। (१६) दंदें = शोर करते हैं। (१७) जवासो = एक प्रकार की झाड़ी जो ग्रीष्म में हरी होती है और वर्षा में मुलस जाती है। (१८) मकारौ = नद, डाकुओं का किला। (१९) मवासो = कुम्हार के अदा जैसा। (२०) ताल = तालाब। (२१) ताल = ताड़। (२२) तमाल = यमुना के किनारे तथा पहाड़ों पर होने वाला सदाबहार का वृक्ष। (२३) जुन्हाई = चाँदनी। (२४) कलिन-कलीन = कली-कली में। (२५) दुनी = दुनिया। (२६)

हेम = सोना। (२७) हय = घोड़ा। (२८) वितरि = बाँटकर, वितरण करके। (२९) गोइ = छिपाकर।

५—मैथिलीशरण गुप्त

(१) नवनीत = माखन। (२) तक्र = मट्ठा, छाछ। (३) अन्ततोगत्वा = आखिरकार। (४) वक्र = टेढ़ी। (५) परित्राण = रक्षा। (६) शक्र = इन्द्र। (७) नक्र = मगर। (८) व्यतीत = भूतकाल। (९) मृत्यु-भीत = मृत्यु से डरा हुआ। (१०) क्षाम = दुर्बल, कृश। (११) लोल = चंचल। (१२) लास = नृत्य। (१३) ऋग्, यजु, साम = वेदों के नाम। (१४) श्राम = श्रम। (१५) भाण = नाटक (एक अंक का हास्य-रूपक)। (१६) वात = हवा। (१७) अर्घ्य = पूजा में देने योग्य सामग्री। पक्ष्म = आँख की बरौनी।

६—जयशंकर प्रसाद

(१) विभावरी = रात्रि। (२) किसलय = नयी पत्तियाँ। (३) अमद = जो धीमा न हो। (४) मलयज = चन्दन। (५) विहाग = राग विशेष। (६) विरल = सूक्ष्म। (७) लोल = चंचल। (८) दुर्ललित = खोटे, बुरे। (९) पुलिन = तट। (१०) विरस = रसहीन (११) कलुष = पाप, लाञ्छन। (१२) कपिशा = एक नदी। (१३) दुर्मद = प्रमत्त। (१४) दुरन्त = भीषण। (१५) त्रासिनी = भय देने वाली। (१६) प्रतारणा = छल, कपट। (१७) प्रत्यावर्तन = लौटना। (१८) शतद्रु = पंजाब की एक नदी। (१९) संगर = युद्ध (२०) ऊर्जस्वित = शक्तिपूर्ण, चढ़ा हुआ। (२१) मणिबन्ध = पहुँचा, कलाई। थाती = धरोहर।

७—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

(१) सलिल = पानी (२) सस्मित = मुस्कराते हुए (३) कलि दल-चुम्बित = कलियों के दल से चूमा हुआ (४) विभूति = वैभव (५) विहित = निर्मित (६) गरल = जहर (७) मेला = एकत्र (८) विप्लव = उपद्रव, त्र (९) प्लावित = डूबा हुआ (१०) अभिनव = नवीन (११) दर्शान- = वयप्राप्त (१२) शायित = सोये हुए।

८—सुमित्रानन्दन पंत

(१) उर्वर = उपजाऊ (२) अव्यय = नष्ट न होनेवाला (३) स्मिति = मुस्कराहट (४) संसृति = सृष्टि (५) नीरव = शब्दहीन (६) कृश = दुर्बल (७) विवसना = निर्वस्त्र (८) तुहिन = ओस (९) मधु ऋतु = वसन्त (१०) आनत = झुके हुए (११) धूसर = धूल से सना हुआ (१२) रक्तोत्पल = लालकमल (सूर्य) (१३) स्वर्णाभ = सुनहरा (१४) अनिद्य = अत्यन्त सुन्दर (१५) अहरह = नित्य, निरन्तर (१६) उडु = तारा (१७) निरुपम = उपमा रहित (१८) सैकत-शैया = बालू की सेज (१९) तन्वगी = दुबली (२०) क्लांत = थकी हुई (२१) कुन्तल = केश (२२) वर्तुल = वक्राकार (२३) सत्वर = शीघ्र (२४) तिर्यक् = टेढ़ा (२५) अराल = टेढ़ा, कुटिल (२६) प्रतीप = प्रतिकूल (२७) प्रतनु = क्षीण (२८) फेन स्फार = झाग।

९—सुश्री महादेवी वर्मा

(१) निस्पन्द = जिसमें किसी प्रकार की गति न हो (२) प्रवाहिनी = नदी (३) जलजात = कमल (४) क्रन्दन = रुदन (५) बयार = हवा (६) उपल = ओले (७) अजर = आँगन (८) अलिंद = द्वार के आगे का चबूतरा या झरोखा (९) प्रणत = झुका हुआ, नम्र (१०) सित = श्वेत (११) अर्चित = पूजित (१२) पार = तीर (१३) अवसान = समाप्ति (१४) सद्य-स्नात = अभी-अभी नहाया हुआ (१५) अक्षत = चावल (१६) उत्पल = कमल (१७) उन्मीलन = विकसित होना।

तार—सप्तक

१—अज्ञेय

(१) अन्तराल = मध्यवर्ती, बीच (२) शुभ्र-धौत = स्वच्छ श्वेत (३) अमित = अपरिमित (४) निःसृत = निकला हुआ (५) द्युमान = प्रकाशवान (६) मेखला = करधनी (७) अनमिष = निर्निमेष (८) पाटल = गुलाब (९) चल-दल = पीपल (१०) व्यास = अर्ध घेरा (११) लास्य = नृत्य (१२) वारि-[illegible] =

= जल-कण (१३) पार्श्व = निकट (१४) अनाहत = जो आहत (घायल) ...
है। (१५) शतदल = कमल (१६) दोल = झूला (१७) गुम्फित = गुँथी हु...

२—गिरिजा कुमार माथुर

(१) मूर्तिमान = प्रकट (२) सम्पातिनयन = दूर द्रष्टा नेत्र (सम्पा...
रामायण के प्रसिद्ध पात्र जटायु का भाई था जो अपने हठ के कारण सूर्य...
पंख जलवा कर शक्तिहीन हो गया था। वह एक पर्वत पर बैठा-बैठा दूर ...
का निरीक्षण करके अपना आहार ढूँढता था। वानरों को सीता की खोज...
उसी से सहायता मिली थी। (४) वल्मीक = दीमक, चींटी आदि द्वा...
बनाया गया मिट्टी का ढेर (५) पैगोड़ा = मिश्र के प्रसिद्ध स्तूप (६) कुफ...
अधर्म।

३—गजानन माधव 'मुक्तिबोध'

(१) दीर्घ = लम्बी (२) आवर्त = घुमाव, भँवर (३) निदर्शन = उदा...
हरण। (४) व्योम = आकाश (५) निस्संग = विरागी (६) कल्मष = पा...
(७) भीतिहीन = भयरहित।

४—डॉ० रामविलास शर्मा

(१) संसर्ग = सम्पर्क (२) तिक्त = कड़वा, तीखा (३) अवांछित = ...
न चाहा गया। (४) कृमि कीट = कीड़े-मकोड़े (५) विपाक्त = विषैला (६...
कर्दममय = कीचड़ युक्त (७) अरुणाभा = लालिमापूर्ण, प्रभात।

५—प्रभाकर माचवे

(१) लहर-दोल = लहरों का झूला (२) अभिसार = प्रिय से मिलने...
के लिए जाना (३) यन्त्रीले = यन्त्रों वाले (४) लहरें = लहराती है।